॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

५

श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः

पदकृत्यटीकासहितो हिन्दीभाषाऽनुवादद्वितयोपेतश्च

व्याख्याकारः—

आचार्य-शेषराजशर्मा रेग्मीः

भूतपूर्व-प्राध्यापकः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,

वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

५

श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः

पदकृत्यटीकासहितो हिन्दीभाषाऽनुवादद्वितयोपेतश्च

व्याख्याकारः—

आचार्य-शेषराजशर्मा रेग्मीः

भूतपूर्व-प्राध्यापकः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,

वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

5

TARKASAMGRAHA

OF

ŚRĪ ANNAMBHAṬṬA

Edited with

'Padakritya'-Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Acharya Shesharaj Sharma 'Ragmi'

Former Professor

Banaras Hindu University, Tribhuvan University and Valmiki Sanskrit Mahavidyalaya, Nepal

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

Also can be had of
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

*

Sole Distributors
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001

प्रस्तावना

तत्त्वज्ञानके साधनको "दर्शन" कहते हैं। भारतीय दर्शनोंमें सामान्यतः दो भेद हैं—आस्तिकदर्शन और नास्तिकदर्शन। आस्तिक दर्शनोंके छः भेद हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। नास्तिकदर्शन तीन हैं—चार्वाक, बौद्ध और जैन। इन तीनोंको वेद-प्रामाण्य न माननेके कारण नास्तिकदर्शन कहते हैं। न्यायदर्शनके कर्त्ता गौतममुनि हैं। उन्होंने प्रमाण और प्रमेय आदि सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है; ऐसा कहा है। वैशेषिकदर्शनके कर्त्ता कणादमुनि हैं। द्रव्य और गुण आदि सात पदार्थोंके साधर्म्य-वैधर्म्य के ज्ञानसे तत्त्वज्ञान द्वारा निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है, ऐसा कणादमुनिका सिद्धान्त है। बहुत से विषयों में समानता होनेसे न्याय और वैशेषिक इन दोनों को सामान्यतः "न्यायशास्त्र" कहते हैं। शास्त्रों के अध्ययनमें कणाद और पाणिनिके शास्त्र बहुत ही उपकारक माने गये हैं। कहा भी गया है—"काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्"। न्यायशास्त्रके प्रारम्भिक ज्ञानके लिए चार ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध और उपयोगी हैं। वे हैं-तर्कसंग्रह, भाषापरिच्छेद, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली और तर्कभाषा। उनमें भी बहुत ही सरल पद्धतिसे रचे जानेसे तर्कसंग्रह प्रथमा परीक्षामें और उसकी टीका "पदकृत्य" मध्यमा परीक्षामें निर्धारित है। तर्कसंग्रहमें प्रमाणोंके विषयमें न्यायदर्शनका और प्रमेयोंमें वैशेषिकदर्शनका अनुसरण किया गया है। अतिशय लोकप्रिय होनेसे इसकी टीकाएँ भी पर्याप्त हैं।

अन्नम्भट्ट कर्णाटक देशके रहनेवाले थे। किसीके मतमें वे तैलङ्गदेशके दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने काशीमें ही अध्ययन किया थो। इन्होंने न्यायमें तर्कसंग्रह और उसकी टीका दीपिका, व्याकरणमें महाभाष्य प्रदीपोद्योतन और अष्टाध्यायी-मिताक्षरा, वेदान्तमें ब्रह्मसूत्रव्याख्या आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

मैंने छात्रोंको बोध करानेके लिए तर्कसंग्रह और पदकृत्यपर बहुत ही सरल पद्धतिसे अनुवाद और स्थल-स्थलपर टिप्पणी तथा अन्तमें न्यायपदार्थोंका संक्षिप्त कोश भी रखकर यह नवीन संस्करण प्रस्तुत किया है। मेरी सफलताके विषयमें कृतवेदी विद्वान् और परीक्षार्थी छात्र ही प्रमाण हैं।

अन्तमें मनुजसुलभ प्रमाद और त्वरासे उत्पन्न स्खलनमें सूचना और क्षमाकी आशा कर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

दुर्गाघाट, वाराणसी
सं० २०३२, गङ्गादशहरा

कोविदवशंवद
शेषराजशर्मा रेग्मी

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

तर्कसंग्रहः

पदकृत्य-टीकासहितः

हिन्दी-भाषाऽनुवादोपेतः

तर्कसंग्रहः

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥
शिवासहायं शिवदं वरेण्यं वरप्रदं भूतिविभूषिताङ्गम् ।
भवार्तिनाशप्रभवं त्रिनेत्रं पञ्चाननं शङ्करमानतोऽस्मि ॥

अनुवाद—संसारके स्वामी भगवान् शङ्करको हृदयमें रखकर (ध्यानकर), गुरुका अभिवादन कर बालकोंको सुखसे बोध करानेके लिए (मैं अन्नम्भट्ट) तर्कसंग्रह-नामक ग्रन्थ को बनाता हूँ ।

पदकृत्यम्

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशङ्करं परम् ।
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥
यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।
तस्माद्धितकरं वाक्यं वक्तव्यं विदुषा सदा ॥

विश्वेशं=जगत्कर्तारं, श्रीसाम्बमूर्त्तिं, हृदि=मनसि, निधाय=नितरां धारयित्वा, गुरुवन्दनं च, विधाय=कृत्वेत्यर्थः । बालेति । अत्राऽधीतव्याकरण-काव्यकोषः अनधीतन्यायशास्त्रो बालः । व्यासादौ अतिव्याप्तिवारणाय अनधीत-न्यायेति । स्तनन्धयेऽतिप्रसक्तिवारणाय अधीतव्याकरणेति । सुखेति । सुखेन=अनायासेन, बोधाय=पदार्थतत्त्वज्ञानायेत्यर्थः । तर्क्यन्ते=प्रमितिविषयीक्रियन्ते,

इति तर्काः=द्रव्यादि-पदार्थाः, तेषां संग्रहः=संक्षेपेणोद्देश-लक्षणपरीक्षा, यस्मिन् स ग्रन्थः। नाममात्रेण वस्तुसङ्कीर्तनम् उद्देशः, यथा—द्रव्यं गुण इति। असाधारण-धर्मो लक्षणम्। यथा—गन्धवत्त्वं पृथिव्याः। लक्षितस्य लक्षणं सम्भवति न वेति विचारः परीक्षा। अत्र उद्देशस्य फलं पक्षज्ञानं, लक्षणस्य इतरभेदज्ञानं, लक्षणे दोषपरिहारः परीक्षायाः फलमिति मन्तव्यम्।

अनुवाद—श्रीगणेशजी और पार्वतीके साथ शङ्करजीको नमस्कार कर मैं चन्द्रजसिंह तर्कसंग्रहके पदकृत्य-नामक टीकाग्रन्थकी रचना करता हूँ।

जिस कारणसे इस(पदकृत्य)को बालकोंका उपकारक मानता हूँ, उस कारणसे विद्वानोंको सदा हित करनेवाला वाक्य कहना चाहिए।

विश्वेश अर्थात् जगत्के कर्ता, जगत्की माता पार्वतीसे युक्त शिवजीको हृदय यानी मन में रखकर और गुरुको वन्दना (अभिवादन) भी करके, बालेति–व्याकरण, काव्य और कोशको पढ़े हुए और न्यायशास्त्रको नहीं पढ़े हुए ऐसे बालकोंको सुख(अनायास)से बोध करानेके लिए तर्कसंग्रह बनाता हूँ, यह तात्पर्य है। यहाँपर 'अधीतव्याकरणकाव्यकोशः' व्याकरण, काव्य और कोशको पढ़ा हुआ, बालकका ऐसा लक्षण करते तो व्याकरण, काव्य और कोशको पढ़े हुए व्यास आदिमें अतिव्याप्ति हो जाती। इसलिए 'अनधीतन्यायशास्त्रः' अर्थात् न्यायशास्त्रको नहीं पढ़ा हुआ, ऐसा पद दिया। यदि 'अनधीतन्यायशास्त्रः' अर्थात् न्यायशास्त्र नहीं पढ़ा हुआ, इतना ही बालकका लक्षण करते तो न्यायशास्त्र स्तनन्धय (दूध पीते) बच्चेने भी नहीं पढ़ा है, उसमें अतिव्याप्ति हो जाती, इसलिए बालकके लक्षणमें दो भाग दिये गये हैं। 'अधीतव्याकरणकाव्यकोशः' कहनेसे स्तनन्धयने व्याकरण, काव्य और कोश भी नहीं पढ़ा है। अतः अतिव्याप्ति दोषकी आशङ्का नहीं है। सुखेति। सुख=अनायाससे, बोध=ज्ञानके लिए, अर्थात् पदार्थके तत्त्वज्ञानके लिए। अब 'तर्कसंग्रह' इस पदमें तर्कका लक्षण करते हैं—'तर्क्यन्ते=प्रमितिविषयीक्रियन्ते इति तर्काः।' जिनका तर्क किया जाता है, अर्थात् जो यथार्थज्ञानके विषय किये जाते हैं, उन्हें 'तर्क' कहते हैं। इस प्रकार तर्क हुए द्रव्य आदि पदार्थ, जो कि न्यायशास्त्रके प्रमेय हैं। उनका संग्रह=अर्थात् संक्षेपसे उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा जिसमें है, ऐसा हुआ 'तर्कसंग्रह' नामक ग्रन्थ। नाममात्रसे पदार्थके संकीर्तनको 'उद्देश' कहते हैं, जैसे—द्रव्यं, गुणः, इत्यादि। असाधारण (असा-

मान्य) धर्मको 'लक्षण' कहते हैं, जैसे—पृथिवीका गन्धवत्व। अर्थात् गन्ध केवल पृथिवीमें रहता है अन्यत्र नहीं, इस कारण पृथ्वीका असाधारण धर्म हुआ 'गन्धवत्त्व'। वही पृथिवीका लक्षण है।

जिस पदार्थका लक्षण किया गया है वह लक्षण संभव है कि नहीं, ऐसे विचारको 'परीक्षा' कहते हैं।

यहाँपर उद्देशका फल पक्षका ज्ञान है। अन्यसे भेदज्ञान लक्षणका फल है। लक्षणमें दोष-परिहार परीक्षाका फल जानना चाहिए।

इति उद्देशप्रकरणम्।

पदार्थभेदाः सप्त—

द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाया-ऽभावाः सप्त पदार्थाः।

अनुवाद—वैशेषिकदर्शनके अनुसार—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य (जाति), विशेष, समवाय और अभाव—ये सात पदार्थ माने गये हैं।

टिप्पणी—पदार्थ का लक्षण है—'पदजन्यप्रतीतिविषयत्वं पदार्थत्वम्।' अर्थात् पदसे उत्पन्न प्रतीति(ज्ञान)के विषयको 'पदार्थ' कहते हैं।

द्रव्यभेदा नव—

तत्र द्रव्याणि—पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाश-काल-दिगात्मा-मनांसि नवैव।

अनुवाद—उन सात पदार्थोंमें—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन—ये नौ ही द्रव्य हैं।

तत्रेति। तत्र = सप्तपदार्थमध्य इत्यर्थः। द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः। एवं 'तत्र' इति पदं 'चतुर्विंशतिर्गुणा' इत्यनेनाऽपि अन्वेति। द्रव्यत्वजातिमत्त्वं, समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्।

अनुवाद—तत्र = सात पदार्थोंके मध्यमें द्रव्य नौ ही हैं। मीमांसक अन्धकारको दशम द्रव्य मानते हैं, यह ठीक नहीं है क्योंकि तेजका अभाव ही अन्धकार है, इसलिए ग्रन्थकार 'द्रव्याणि नव एव' अर्थात् द्रव्य नौ ही हैं कहते हैं।

इस प्रकार 'तत्र' यह पद 'चतुर्विंशतिर्गुणाः' इससे भी अन्वित होता है।

टिप्पणी—अब द्रव्यका लक्षण लिखते हैं—'द्रव्यत्वजातिमत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्।' अर्थात् जिसमें द्रव्यत्वजाति रहती है अथवा जो कार्यमात्रका समवायिकारण है, उसे 'द्रव्य' कहते हैं।

गुणभेदाश्चतुर्विंशतिः—

रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-शब्द-बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्माऽधर्म-संस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः ।

अनुवाद—१ रूप, २ रस, ३ गन्ध, ४ स्पर्श, ५ संख्या, ६ परिमाण, ७ पृथक्त्व, ८ संयोग, ९ विभाग, १० परत्व, ११ अपरत्व, १२ गुरुत्व, १३ द्रवत्व, १४ स्नेह, १५ शब्द, १६ बुद्धि, १७ सुख, १८ दुःख, १९ इच्छा, २० द्वेष, २१ प्रयत्न, २२ धर्म, २३ अधर्म और २४ संस्कार—ये चौबीस गुण हैं ।

टिप्पणी—अब गुणका लक्षण लिखते हैं—'द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वं गुणसामान्यलक्षणम्' सामान्यको जाति भी कहते हैं । द्रव्य, गुण और कर्म इनमें सामान्य रहता है । द्रव्य और कर्मसे भिन्न होकर जिसमें सामान्य रहता है, उसे 'गुण' कहते हैं ।

कर्माणि पञ्चविधानि—

उत्क्षेपणाऽपक्षेपणाऽऽकुञ्चन-प्रसारण-गमनानि पञ्च कर्माणि ।

अनुवाद—उत्क्षेपण (ऊपरकी ओर फेंकना), अपक्षेपण (नीचेकी ओर फेंकना), आकुञ्चन (समेटना), प्रसारण (फैलाना) और गमन (चलना), ये पांच कर्म हैं ।

टिप्पणी—कर्मका लक्षण है—'संयोगभिन्नत्वे सति संयोगाऽसमवायिकारणत्वं कर्मत्वम्' । अर्थात् संयोगसे भिन्न होकर जो संयोगका असमवायिकारण है, उसे 'कर्म' कहते हैं । संयोगका असमवायिकारण संयोग भी होता है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संयोगभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण दिया गया है ।

सामान्यं द्विविधम्—

परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ।

अनुवाद—सामान्यके दो भेद हैं—परसामान्य और अपरसामान्य ।

परमपरं चेति । परसामान्यमपरसामान्यमित्यर्थः । परत्वं च अधिकदेशवृत्तित्वम् । अपरत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वम् । तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवरूपदोषत्रयशून्यं, यथा—गोः सास्नादिमत्त्वम् । अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशाऽवृत्तित्वम्; अतएव गोर्न कपिलत्वं लक्षणं, तस्य अव्याप्तिग्रस्तत्वात् । अतिव्या-

प्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वम्, अतएव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणं, तस्य अव्याप्तिग्रस्तत्वात् । असम्भवश्च लक्ष्यमात्राऽवृत्तित्वं, यथा—गोः एकशफवत्त्वं न लक्षणं, तस्य असम्भवग्रस्तत्वात् ।

अनुवाद—सामान्यको 'जाति' भी कहते हैं। सामान्यका लक्षण है—'नित्यत्वे सति अनेकसमवेतत्वं सामान्यम्' अर्थात् नित्य होकर जो अनेकमें समवायसम्बन्धसे रहता है, उसे सामान्य (जाति) कहते हैं। अधिक देशमें रहने वाले सामान्यको 'परसामान्य' कहते हैं और न्यूनदेशमें रहनेवाले सामान्यको 'अपरसामान्य' कहते हैं। जैसे—द्रव्यत्वजाति पृथिवी आदि समस्त द्रव्योंमें रहती है, अतः अधिक देशमें रहनेसे वह 'परजाति' है और पृथ्वीत्व जाति केवल पृथिवीमें रहती है, अतः न्यूनदेशमें रहनेसे वह 'अपरजाति' है।

जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव इन तीन दोषोंसे शून्य (रहित) हो, उसे 'लक्षण' कहते हैं। जैसे कि गायका लक्षण है—'शृङ्गसास्नादिमत्त्वं गोत्वम्।' अर्थात् जिसमें सींग और सास्ना (गलेमें लटकनेवाला मांसपिण्ड) आदि हो, उसे 'गाय' कहते हैं, उसमें अव्याप्ति आदि कोई भी दोष नहीं है।

अब अव्याप्तिका लक्षण करते हैं—'लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् अव्याप्तिः' अर्थात् लक्ष्यके एकदेशमें न रहनेको 'अव्याप्ति' कहते हैं। जैसे किसीने—'कपिलत्वं गोत्वम्' गायका ऐसा लक्षण किया। इसमें लक्ष्य हुई गाय, उसका एकदेश हुआ सफेद गाय, उसमें 'कपिलत्व' धर्म नहीं रहता है। इसलिए 'कपिलत्व'में अव्याप्ति होनेसे वह लक्षण नहीं है। इसी प्रकार अतिव्याप्तिका लक्षण है—'लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वम्' अर्थात् जो लक्ष्यमें रहकर अलक्ष्य (लक्ष्यसे भिन्न) देशमें भी रहे, उसे 'अतिव्याप्ति' कहते हैं। जैसे किसीने गायका लक्षण किया—'शृङ्गित्वं गोत्वम्' जो शृङ्ग(सींग)से युक्त है, उसे गाय कहते हैं, उसमें शृङ्गित्व धर्म (सींगका रहना) लक्ष्य गायमें रहकर अलक्ष्य (लक्ष्यसे भिन्न) महिषमें भी रहता है, अतः 'शृङ्गत्व'में अतिव्याप्ति होनेसे वह लक्षण नहीं है। इसी तरह 'असंभव'का लक्षण है—'लक्ष्यमात्राऽवर्तनम् असम्भवः' अर्थात् लक्ष्यमात्रमें जो न रहे, उसे 'असंभव' कहते हैं। जैसे किसीने गायका लक्षण किया—'एकशफवत्त्वं गोत्वम्' अर्थात् जिसके एक खुर हो, वह गाय है, इसमें 'एकशफवत्त्वम्' एक खुरका रहना लक्ष्य गोमात्रमें न होकर असम्भव दोषसे ग्रस्त होनेसे यह भी लक्षण नहीं है।

विशेषाः कतिविधाः—

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव।

अनुवाद—नित्यद्रव्यमें रहनेवाले 'विशेष' अनन्त हैं।

टिप्पणी—विशेषका लक्षण है—'अन्त्यत्वे सति नित्यद्रव्यवृत्तित्वं विशेषत्वम्' अर्थात् अन्त्य होकर जो नित्यद्रव्यमें रहता है, उसे 'विशेष' कहते हैं। पृथिवी, जल, तेज और वायुके परमाणु और आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन इनको 'नित्यद्रव्य' कहते हैं।

नित्येति। **ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाऽप्रतियोगित्वं नित्यत्वम्। ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ध्वंसभिन्नेति विशेषणम्। घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्। ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वाऽनित्यत्वम्।**

अनुवाद—नित्यका लक्षण करते हैं—'ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाऽप्रतियोगित्वं नित्यत्वम्'। अर्थात् ध्वंससे भिन्न होकर जो ध्वंसका प्रतियोगी नहीं है, उसे 'नित्य' कहते हैं। यहाँ पर 'ध्वंसाप्रतियोगित्वम्' अर्थात् जो ध्वंसका प्रतियोगी नहीं, इतना ही लक्षण करेंगे तो ध्वंसमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि ध्वंसका अप्रतियोगी ध्वंस भी है, इसलिए 'ध्वंसभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण भी जोड़ दिया गया है। 'ध्वंसभिन्नत्वम्' अर्थात् जो ध्वंससे भिन्न है, ऐसा लक्षण करेंगे तो घट आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि घट भी ध्वंससे भिन्न है, इसलिए 'ध्वंसाप्रतियोगित्वम्' अर्थात् जो ध्वंसका प्रतियोगी नहीं है, ऐसा विशेष्य भाग दिया। जिसका अभाव है वह प्रतियोगी है, जैसे—घट-ध्वंसका प्रतियोगी घट होता है।

अब अनित्यका लक्षण करते हैं—'ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वा अनित्यत्वम्' अर्थात् जो ध्वंसका प्रतियोगी है अथवा प्रागभावका प्रतियोगी है, उसे 'अनित्य' कहते हैं। पदार्थकी उत्पत्तिके पहले होनेवाले अभावको 'प्रागभाव' कहते हैं। जैसे कि—'इह कपाले घटो भविष्यति' अर्थात् इस कपालमें घट होगा।

समवायलक्षणम्—

समवायस्त्वेक एव।

अनुवाद—समवायसम्बन्ध एक ही प्रकारका है।

टिप्पणी—समवायका लक्षण है—'नित्यसम्बन्धत्वं समवायलक्षणम्' अर्थात् नित्यसम्बन्धको समवाय कहते हैं। अवयव और अवयवीके, जाति और व्यक्तिके,

गुण और गुणीके, क्रिया और क्रियावान्‌के और विशेष और नित्यद्रव्यके सम्बन्धको 'समवाय' कहते हैं।

अभावश्चतुर्विधः—

अभावश्चतुर्विधः—प्रागभावः, प्रध्वंसाऽभावः, अत्यन्ताऽभावः, अन्योन्याऽभावश्चेति।

अनुवाद—अभावके चार भेद हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाऽभाव, अत्यन्ताऽभाव और अन्योन्याऽभाव।

टिप्पणी—अभावका लक्षण है–'भावभिन्नत्वं वा प्रतियोगिज्ञानाऽधीनज्ञान-विषयत्वम् अभावत्वम्'। अर्थात् भावसे भिन्नको अथवा प्रतियोगीके ज्ञानके अधीन ज्ञान-विषयको 'अभाव' कहते हैं।

२. द्रव्यलक्षणप्रकरणम्

पृथिव्या लक्षणं तस्या भेदाश्च—

तत्र गन्धवती पृथिवी। सा द्विविधा—नित्या अनित्या च। नित्या परमाणुरूपा। अनित्या कार्यरूपा। पुनस्त्रिविधा—शरीरेन्द्रियविषय-भेदात्। शरीरमस्मदादीनाम्। इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाऽग्रवर्ति। विषयो मृत्पाषाणादिः।

अनुवाद—उन नौ द्रव्योंमें जिसमें गन्ध रहता है, उसे 'पृथिवी' कहते हैं। पृथिवी दो प्रकारकी होती है—नित्या और अनित्या। परमाणुरूप पृथिवी नित्या और कार्यरूप पृथिवी अनित्या है। शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे वह अनित्य पृथिवी फिर तीन प्रकारकी होती है। हम लोगोंका शरीर पृथिवीका शरीर है। पृथिवीका इन्द्रिय, गन्धको ग्रहण करनेवाला 'घ्राण' है, जो कि नासिकाके अग्रभागमें रहता है। पृथिवीका विषय मृत्तिका (मिट्टी) और पाषाण (पत्थर) आदि है।

टिप्पणी—पृथिवीका लक्षण है—'गन्धसमवायिकारणत्वं पृथिवीत्वम्' अर्थात् गन्धके समवायिकारणको 'पृथिवी' कहते हैं।

शरीरेति। यदुपभोगायतनं तदेव शरीरं चेष्टाऽऽश्रयो वा। इन्द्रियमिति। चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धग्राहकमिति। कालादावतिप्रसक्तिवारणाय इन्द्रियमिति। विषय इति। शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति उपभोगसाधनं विषयः।

शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । कालादिवारणाय जन्यत्वे सति इत्यपि बोध्यम् ।

अनुवाद—शरीरका लक्षण करते हैं—'भोगायतनत्वं चेष्टाश्रयत्वं वा शरीरत्वम् ।' अर्थात् जो भोगका अथवा चेष्टाका आश्रय है, उसे 'शरीर' कहते हैं । सुख वा दुःखके अनुभवको 'भोग' कहते हैं ।

'इन्द्रियम्' इतना ही लिखेंगे तो चक्षु आदिमें अतिव्याप्ति होगी । इसीलिए 'गन्धग्राहकम्' कहा, सो चक्षु गन्धका ग्राहक नहीं, रूपका ग्राहक है । केवल 'गन्धग्राहकम्' लिखेंगे तो काल आदिमें अतिव्याप्ति होगी । इसलिए 'इन्द्रियम्' लिखा, काल आदि इन्द्रिय नहीं है । विषयका लक्षण कहते हैं—'शरीरेन्द्रिय-भिन्नत्वे सति उपभोगसाधनत्वं विषयत्वम्' । अर्थात् शरीर और इन्द्रियसे भिन्न होकर जो उपभोगसाधन है, उसे 'विषय' कहते हैं । 'उपभोगसाधनम्' इतना ही लिखेंगे तो शरीर आदिमें अतिव्याप्ति होगी । इसलिए 'शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण दिया । 'शरीरेन्द्रियभिन्नत्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो परमाणु आदिमें अतिव्याप्ति होगी । इसलिए 'उपभोगसाधनम्' ऐसा विशेष्य-दल दिया गया है । विषयका पूर्वोक्त लक्षण करनेपर भी काल आदिमें अति-व्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि शरीर और इन्द्रियसे भिन्न होकर उपभोगका साधन काल आदि भी है । इसलिए उनमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'जन्यत्वे सति' ऐसा विशेषण दल भी देना चाहिए, जन्य नहीं होनेसे काल आदि नित्य पदार्थमें अतिप्रसक्ति नहीं होगी ।

अपां किं लक्षणं ? तासां कति भेदाः—

शीतस्पर्शवत्य आपः । ता द्विविधाः—नित्या अनित्याश्च । नित्याः परमाणुरूपाः । अनित्याः कार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः—शरीरेन्द्रिय-विषयभेदात् । शरीरं वरुणलोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाऽग्र-वर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ।

अनुवाद—जिसका स्पर्श शीतल है, उसे 'जल' कहते हैं । वह जल दो प्रकारका होता है—नित्य और अनित्य । परणाणुरूप जल नित्य है और कार्य-रूप जल अनित्य है । शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे अनित्य जलके तीन भेद होते हैं । जलका शरीर वरुणलोकमें रहता है । जलका इन्द्रिय रसको ग्रहण करनेवाला 'रसन' नामका है, जो कि जिह्वा(जीभ)के अग्रभागमें रहता है । जलका विषय नदी और समुद्र आदि हैं ।

टिप्पणी—जलका लक्षण है—'शीतस्पर्शसमवायिकारणत्वं जलत्वम्'। अर्थात् शीत स्पर्शका जो समवायिकारण है, उसे 'जल' कहते हैं।

शीतेति। तेज आदावतिव्याप्तिवारणाय शीतेति। आकाङ्क्षावारणाय स्पर्शेति। कालादावतिप्रसक्तिवारणाय समवायसम्बन्धेनेति पदं देयम्। इन्द्रियमिति। त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय रसग्राहकमिति। रसनेन्द्रिय-रससन्निकर्षादौ अतिव्याप्तिवारणाय इन्द्रियमिति। सरिदिति। आदिना तडागहिमकरकादीनां संग्रहः।

अनुवाद—'स्पर्शवत्य आपः' इतना ही लक्षण करेंगे तो तेज आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि स्पर्श तेजमें भी है। इसलिए स्पर्शका विशेषण 'शीत' पद दिया गया है। केवल 'शीत' पद दे दें तो विशेष्यवाचक पदकी आकांक्षा बनी रहेगी। अतः उसके निवारणके लिए 'स्पर्श' पद दिया है। कार्यमात्रके प्रति साधारण कारण काल आदिमें भी शीतस्पर्श रहता है, इसलिए उनमें अतिव्याप्तिके निवारण करनेके लिए 'समवायसम्बन्धेन' यह पद देना चाहिए। समवायसम्बन्धसे शीतस्पर्श जलमें ही रहता है, अन्यत्र काल आदिमें नहीं।

केवल 'इन्द्रियम्' ऐसा लिखेंगे तो त्वक् आदि इन्द्रियमें अतिव्याप्ति होगी, उसे निवारण करनेके लिए 'रसग्राहकम्' ऐसा विशेषण दिया है। रसको ग्रहण करनेवाला इन्द्रिय रसन (जिह्वा) है, त्वक् नहीं। 'रसग्राहकम्' इतना ही लिखेंगे तो रसको ग्रहण करनेवाला रसनेन्द्रियका रससन्निकर्ष भी है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसका वारण करनेके लिए 'इन्द्रियम्' ऐसा लिखा है। रससन्निकर्ष इन्द्रिय नहीं, इसलिए अतिव्याप्ति नहीं। नदी और समुद्र आदि जलके विषय हैं, यहाँपर 'आदि' पदसे तडाग (तालाब) आदि जलाशयका संग्रह होता है।

तेजसो लक्षणं तद्भेदाश्च—

उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्च द्विविधं—नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुरूपम्, अनित्यं कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधं—शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराऽग्रवर्ति। विषयश्चतुर्विधः—भौमदिव्योदर्याकरजभेदात्। भौमं वह्न्यादिकम्। अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि। भुक्तस्य परिणामहेतुरुदर्यम्। आकरजं सुवर्णादि।

अनुवाद—जिस द्रव्यमें ऊष्ण (गरम) स्पर्श रहता है, उसे 'तेज' कहते हैं।

उसके दो भेद हैं— नित्य और अनित्य। नित्य तेज परमाणुरूप और अनित्य कार्यरूप होता है। अनित्य तेज—शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे फिर तीन प्रकारका होता है। तेजका शरीर सूर्यलोकमें प्रसिद्ध है, इन्द्रिय, रूपका ग्रहण करनेवाला नेत्र नामका है, वह काली तारा(पुतली)के अग्रभागमें रहता है। तेजका विषय भौम, दिव्य, उदर्य और आकरज—इनके भेदसे चार प्रकारका होता है। अग्नि आदि भौम (भूमिमें रहनेवाला) तेज है। अप् (जल) रूप इन्धनवाले तेजको 'दिव्य' तेज कहते हैं, वह बिजली आदि है। खाये गये पदार्थके परिणामका कारण जो तेज है, उसे 'उदर्य' कहते हैं। आकर अर्थात् खानसे उत्पन्न तेजको सुवर्ण आदि कहते हैं।

उष्णेति। जलादावतिव्याप्तिवारणाय उष्णेति। कालादावतिप्रसङ्गवारणाय 'समवायसम्बन्धेन' इति पदं देयम्। इन्द्रियमिति। घ्राणादौ अतिव्याप्तिवारणाय रूपग्राहकमिति। कालादौ अतिव्याप्तिनिरसनाय इन्द्रियमिति। भेदादिति पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते। भौममिति। आदिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतेः परिग्रहः। विद्युदादीति। आदिना अर्कचन्द्रादीनां परिग्रहः। भुक्तेति। भुक्तस्य=अन्नादेः, पीतस्य=जलस्य, परिणामः=जीर्णता, तस्य हेतुरुदर्यमित्यर्थः। सुवर्णेति। आदिना रजतादिपरिग्रहः।

अनुवाद—केवल 'स्पर्शवत् तेजः' ऐसा लिखें तो जल आदिमें अतिव्याप्ति होगी। इसलिए स्पर्शका विशेषण 'उष्ण' पद रक्खा गया है। उष्ण स्पर्श काल आदि साधारण कारणमें भी रहता है, अतः अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'समवायसम्बन्धेन' यह पद देना चाहिए। समवायसम्बन्धसे उष्ण स्पर्श तेजमें ही रहता है, अन्यत्र काल आदिमें नहीं। ग्राहकत्व धर्म घ्राण आदिमें भी है, इसलिए अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'रूपग्राहकम्' पद देना चाहिए।

'भौम० भेदात्' यहाँ द्वन्द्व समासके अन्तमें भेद पद होनेसे भौमभेदात्, दिव्यभेदात्, उदर्यभेदात्, आकरजभेदात् ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए। भौम विषय, वह्नि आदि हैं, यहाँपर आदि पदसे खद्योत(जुगनू)में स्थित तेज आदिका भी स्वीकार करना चाहिए। दिव्य विषय विद्युत् आदि हैं, यहाँपर आदि पदसे सूर्य-चन्द्र आदिका भी ग्रहण करना चाहिए। 'भुक्तस्य' कहनेसे 'अन्नस्य' और उपलक्षण रूपसे 'पीतस्य जलस्य' ऐसी कल्पना करनी चाहिए। खाये गये अन्नका और पीये गये जलका परिणाम यानी परिपाकका हेतु उदर्य अर्थात्

उदरका अग्नि है। आकरज विषय, सुवर्ण आदि हैं, यहाँपर आदि पदसे रजत (चाँदी) आदिको भी समझना चाहिए।

वायोर्लक्षणं तस्य भेदाश्च—

रूपरहितस्पर्शवान्वायुः। स द्विविधो—नित्योऽनित्यश्च। नित्यः परमाणुरूपः, अनित्यः कार्यरूपः। सः पुनस्त्रिविधः—शरीरेन्द्रियविषय-भेदात्। शरीरं वायुलोके। इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक्, सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः। शरीराऽन्तःसञ्चारी वायुः प्राणः, स चैको-ऽपि उपाधिभेदात् प्राणाऽपानादिसंज्ञां लभते।

अनुवाद–जिसमें रूप नहीं है और स्पर्श है, उस द्रव्यको 'वायु' कहते हैं। उसके दो भेद हैं—नित्य और अनित्य। नित्य वायु परमाणुरूप है और अनित्य कार्यरूप है। शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे अनित्य वायु फिर तीन प्रकारका होता है। वायुका शरीर वायुलोकमें है, इन्द्रिय-स्पर्शको ग्रहण करनेवाला 'त्वक्' है और वह समस्त शरीरमें रहता है। वायुका विषय वृक्ष आदिके कम्पनका हेतु है। शरीरके भीतर चलनेवाले वायुको 'प्राण' कहते हैं; वह एक ही है। तथापि उपाधि-भेदसे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान —इन नामोंको प्राप्त करता है।

टिप्पणी—जैसे; 'हृदि प्राणो गुदेऽपानः, समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥'

अर्थात् प्राण हृदयमें, अपान गुदामें, समान नाभिमण्डलमें, उदान कण्ठदेश-में और व्यान समस्त शरीरमें रहता हैं।

रूपेति। घटादिवारणाय विशेषणम्। आकाशादिवारणाय विशेष्यम्। इन्द्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय स्पर्शग्राहकमिति। कालादौ अतिव्याप्तिवारणाय इन्द्रियमिति। वृक्षेति। आदिपदेन जलादिपरिग्रहः। शरीराऽन्तरिति। महा-वाय्वादौ अतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम्। मन आदिवारणाय विशेष्यम्। धन-ञ्जयवारणाय सञ्चारीति। उपाधीति। मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात्प्राणः। जलादेरधोनयनादपानः। भुक्तपरिणामाय जाठराऽनलस्य समुन्नयनात्समानः। अन्नादेरूर्ध्वंनयनादुदानः। नाडीमुखेषु वितननाद् व्यानः। इति क्रियारूपोपाधि-भेदात्तथा व्यवह्रियत इत्यर्थः।

अनुवाद 'स्पर्शवान्' इतना ही वायुका लक्षण करेंगे तो स्पर्शवाला होनेसे

घट आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'रूपरहितः' ऐसा विशेषण दिया है। सो घट आदिमें रूपके रहनेसे अतिव्याप्ति नहीं हुई। अब खाली 'रूपरहितः' इतना ही दें तो आकाश आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि आकाश आदिमें रूप नहीं है, इसलिए 'स्पर्शवान्' ऐसा विशेष्यदल दिया है, सो आकाशमें स्पर्शके न रहनेसे अतिव्याप्ति नहीं हुई। अब केवल 'ग्राहकम्' लिखेंगे तो चक्षु आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए 'स्पर्शग्राहकम्' लिखा, स्पर्शको ग्रहण करनेवाला इन्द्रिय चक्षु नहीं, त्वक् है। 'स्पर्शग्राहकम्' इतना ही लिखेंगे तो साधारण कारण काल आदि भी स्पर्शग्राहक है, उनमें अतिव्याप्ति होगी। इसलिए 'इन्द्रियम्' ऐसा लिखा, काल आदि इन्द्रिय नहीं। वृक्ष आदिके कम्पनका कारण वायु विषय है, यहाँपर 'आदि' पदसे जल आदिका भी ग्रहण होता है। खाली 'वायुः प्राणः' ऐसा लिखें तो महावायु आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए 'शरीराऽन्तःसञ्चारी' ऐसा विशेषण दिया है। शरीरके भीतर संचरण करनेवाला वायु प्राण है, महावायु नहीं है। अब 'शरीरान्तःसञ्चारी' इतना ही लिखें तो मन आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उन्हें हटानेके लिए 'वायुः' ऐसा विशेष्य पद दिया है। मन आदि वायु नहीं हैं। 'सञ्चारी' यह पद नहीं देंगे तो धनञ्जय वायुमें अतिव्याप्ति होगी। 'शरीराऽन्तःसञ्चारी' कहनेसे धनञ्जय वायु शरीरमें है, पर उसके भीतर सञ्चरण नहीं करता अतः दोष नहीं है। प्राण एक है, उपाधियोंके भेदसे प्राण, अपान आदि संज्ञाको प्राप्त करता है। मुख और नाकसे निकलने और प्रवेश करनेसे 'प्राण', जल और अन्न आदिको नीचे ले जानेसे 'अपान', खाये गये अन्नके परिपाकके लिए पेटके अग्निको नाभिमण्डल ले जानेसे 'समान', अन्न आदिको ऊपर ले जानेसे 'उदान' और नाड़ीमुखोंमें फैलानेसे 'व्यान'—इस प्रकार क्रियारूप उपाधियोंके भेदसे एक ही वायुका प्राण आदि पाँच नामोंसे व्यवहार किया जाता है।

आकाशलक्षणम्—

शब्दगुणकमाकाशम्। तच्चैकं विभु नित्यं च।

अनुवाद—'शब्द' गुणवाले द्रव्यका नाम आकाश है। वह एक, विभु और नित्य है।

टिप्पणी—आकाशका लक्षण है—'शब्दसमवायिकारणत्वम् आकाशत्वम्'

अर्थात् जो शब्दका समवायिकारण है, वह आकाश है। विभुका लक्षण है—'सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्'। अर्थात् जो सम्पूर्ण मूर्तद्रव्योंका संयोगी है, उसे 'विभु' कहते हैं। विभु चार माने गये हैं—आकाश, काल, दिक् और आत्मा। मूर्तका लक्षण है—'क्रियावत्त्वं मूर्तत्वम्' अर्थात् जिसमें क्रिया रहती है, उसे 'मूर्त' कहते हैं। मूर्तद्रव्य ५ माने गये हैं—पृथिवी, अप्, तेज, वायु और मन।

शब्देति। **शब्दो गुणो यस्य तत्तथा। असम्भववारणाय शब्दगुणोभयम्। विभ्विति। सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगीत्यर्थः।**

अनुवाद—केवल 'शब्द' और केवल 'गुण' पद देंगे तो लक्ष्य आकाशमें शब्दत्व और गुणत्व धर्मके न रहनेसे 'असम्भव' नामका लक्षणदोष आ जाता, अतः उसका निवारण करनेके लिए 'शब्द' और 'गुण' दोनों पद देनेसे 'शब्दो गुणो यस्य तत्' ऐसा विग्रह कर बहुव्रीहि समास करनेसे 'समवायसम्बन्धेन शब्दाश्रयत्वम् आकाशत्वम्' ऐसा लक्षण हुआ। अर्थात् जिसमें समवायसम्बन्ध से शब्द रहता है, उसे आकाश कहते हैं। वह आकाश विभु अर्थात् समस्त मूर्त-द्रव्योंका संयोगी है।

कालस्य लक्षणम्—

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च।

अनुवाद—अतीत आदि (अतीत = भूत, भविष्यत् और वर्तमान) व्यवहारके कारणको 'काल' कहते हैं ? वह एक है, विभु और नित्य भी है।

टिप्पणी—अब कालका निष्कृष्ट लक्षण करते हैं—'विभुत्वे सति अतीतादिव्यवहारस्य निमित्तकारणत्वं कालत्वम्' अर्थात् विभु होकर जो अतीत आदि व्यवहारका निमित्तकारण है, उसे काल कहते हैं। इस लक्षणमें आकाशमें और कण्ठ-तालु आदिके अभिघातमें अतिव्याप्ति नहीं जाती है।

अतीतेति। **अतीत इत्यादिर्यो व्यवहारः = अतीतः भविष्यत् वर्तमानः इत्यात्मकः, तस्य असाधारणहेतुः काल इत्यर्थः। ननु इदं लक्षणम् आकाशेऽतिव्याप्तम्, व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वादिति चेत् ? न। अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षणात्। न च एवमपि कण्ठताल्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम्, विभुत्वयाऽपि निदेशात्।**

अनुवाद—अतीत इत्यादि जो व्यवहार (अतीत, भविष्यत्, वर्तमान), उसके असाधारण कारणको 'काल' कहते हैं। व्यवहार शब्दस्वरूप है, इस

कारण इस लक्षणके आकाशमें चले जानेसे अतिव्याप्ति हो गई, ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, यहाँ पर हेतु (कारण) पदमें निमित्त हेतु(कारण)-की विवक्षा है । अतीत आदि व्यवहारका निमित्तकारण 'काल' है, आकाश नहीं । इतना करनेपर भी कण्ठ तालु आदिका अभिघात भी अतीत आदि व्यवहारका निमित्तकारण है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हो जायेगी, ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए । लक्षणमें विभुत्वका निवेश करनेसे अभिघातमें विभुत्वके रहनेसे अतिव्याप्ति नहीं होगी ।

दिशो लक्षणम्—

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च ।

अनुवाद—प्राची (पूर्व दिशा) आदि व्यवहारके कारणको 'दिक्' कहते हैं, वह एक है, नित्य और विभु भी है ।

टिप्पणी—अब दिक्का निर्दुष्ट लक्षण देते हैं—'प्राच्यादिव्यवहारस्य असाधारणकारणत्वं दिक्त्वम्' अर्थात् प्राची आदि व्यवहारके असाधारण कारणको 'दिक्' कहते हैं । आकाश आदि तो कार्यमात्रका साधारण कारण है, असाधारण कारण नहीं, अतः कोई दोष नहीं ।

प्राचीति । इयं प्राची, इयमवाची, इयं प्रतीची, इयमुदीची इत्यादिव्यवहाराऽसाधारणकारणं दिगित्यर्थः । हेतुर्दिगित्युच्यमाने परमाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय प्राच्यादिव्यवहारहेतुरिति । आकाशादिवारणाय असाधारणेत्यपि बोध्यम् ।

अनुवाद—यह प्राची (पूर्व दिशा), यह अवाची (दक्षिण दिशा), यह प्रतीची (पश्चिम दिशा) और यह उदीची (उत्तर दिशा) इत्यादि व्यवहारके असाधारण कारणको 'दिक्' कहते हैं । 'हेतुर्दिक्' अर्थात् हेतु दिशा है, ऐसा कहेंगे तो परमाणु आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए उसको हटानेके लिए 'प्राच्यादिव्यवहारहेतुः' अर्थात् प्राची—आदिके व्यवहारका कारण कहा है । परमाणु प्राची—आदिके व्यवहारका कारण नहीं है, अतः दोष नहीं । इतनेपर भी प्राची आदि व्यवहारके साधारण कारण आकाश आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए उसे हटानेके लिए 'असाधारण' पद भी देना चाहिए ।

भेदपूर्वकमात्मनो लक्षणम्—

ज्ञानाऽधिकरणमात्मा । स द्विविधो—जीवात्मा परमात्मा च । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः, परमात्मा एक एव । जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ।

अनुवाद—ज्ञानके आश्रयको 'आत्मा' कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा—इस प्रकारसे उसके दो भेद हैं। उनमें परमात्मा ईश्वर (समर्थ) और सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) एक ही है। जीव प्रत्येक शरीरमें भिन्न विभु और नित्य भी है।

ज्ञानेति। भूतलादिवारणाय ज्ञानेति। कालादिवारणाय 'समवायेन' इत्यपि देयम्। ईश्वर इति। समवायसम्बन्धेन नित्यज्ञानवान् ईश्वरः। जीव इति। सुखादिसमवायिकारणं जीव इत्यर्थः।

अनुवाद—'अधिकरणम् आत्मा' अर्थात् आश्रयको आत्मा कहते हैं, ऐसा लक्षण करेंगे तो घट आदिके आश्रय भूतलमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसको हटानेके लिए 'ज्ञान' पदका निवेश किया है। ज्ञान गुणका आश्रय आत्मा है, भूतल आदि नहीं। इतनेपर भी ज्ञानका आश्रय काल आदि साधारण कारण भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'समवाय-सम्बन्धेन ज्ञानाऽधिकरणत्वम् आत्मत्वम्' अर्थात् समवायसम्बन्धसे ज्ञानके आश्रयको 'आत्मा' कहना चाहिए, ऐसा लक्षण करना चाहिए। समवाय-सम्बन्धसे ज्ञानका आश्रय आत्मा है, साधारण कारण काल आदि नहीं, इस तरह दोष नहीं है। ईश्वर का लक्षण करते हैं, 'समवाय-सम्बन्धेन नित्यज्ञानवत्त्वम् ईश्वरत्वम्' अर्थात् समवायसम्बन्धसे नित्य ज्ञानवालेको 'ईश्वर' कहते हैं। जीवका दूसरा लक्षण देते हैं—'सुखादिसमवायिकारणत्वम्' अर्थात् सुख आदिका जो समवायिकारण है, उसे 'जीव' कहते हैं।

मनसो लक्षणम्—

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च।

अनुवाद—सुख-दुःख आदिकी प्राप्तिके साधन इन्द्रियको 'मन' कहते हैं। वह प्रत्येक आत्मामें नियत होनेसे अनन्त, परमाणुरूप और नित्य भी है।

सुखेति। आत्ममनःसंयोगादिवारणाय इन्द्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय सुखेति।

अनुवाद—आत्मा और मनका संयोग आदि भी सुख और दुःख आदि प्राप्ति-साधन है, इसलिए 'इन्द्रियम्' ऐसा पद दिया गया। आत्मा और मनका संयोग इन्द्रिय नहीं, अतः अतिव्याप्ति नहीं हुई। मनका लक्षण है—'सुखाद्युपलब्धिसाधनत्वे सति इन्द्रियत्वं मनस्त्वम्।' केवल 'उपलब्धिसाधनम्' लिखेंगे

तो रूप आदिका उपलब्धिसाधन चक्षु आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए उसके निवारणके लिए 'सुख' पद दे दिया है। चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय तो है पर सुख आदिका साधन नहीं है, अतः दोष नहीं।

३. गुणलक्षण-प्रकरणम्

रूपस्य लक्षणं तस्य भेदाश्च—

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। तच्च—शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश-चित्रभेदात्सप्तविधम्। पृथिवीजलतेजोवृत्तिः। तत्र पृथिव्यां सप्तविधम्। अभास्वरशुक्लं जले। भास्वरशुक्लं तेजसि।

अनुवाद—केवल नेत्रसे ग्रहण किये जानेवाले गुणको 'रूप' कहते हैं। वह शुक्ल (सफेद), नील (काला), पीत (पीला), रक्त (लाल), हरित (हरा), कपिश (काला और पीला) और चित्र (चितकबरा)—इनके भेदसे सात प्रकारका है। रूप पृथिवी, जल और तेजमें रहता है। उनमें पृथिवीके पूर्वोक्त सातों रूप रहते हैं। अभास्वर (न चमकनेवाला) शुक्ल रूप जलमें और 'भास्वर'[1] (चमकीला) शुक्ल रूप तेजमें रहता है।

टिप्पणी—रूपका लक्षण है—'चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वे सति गुणत्वं रूपत्वम्' अर्थात् चक्षुरिन्द्रियमात्रसे ग्राह्य होनेवाले गुणको 'रूप' कहते हैं।

चक्षुरिति। रूपत्वादिवारणाय गुणपदम्। रसादिवारणाय चक्षुर्ग्राह्य इति। संख्यादिवारणाय मात्रपदम्। यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोगवारणाय गुणपदेन विशेषगुणस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादिवारणं सम्भवतीति मात्रपदं व्यर्थम्। तथाऽपि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तद् आवश्यकम्। वस्तुतस्तु परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम्। द्व्यणुकादिवारणाय गुणपदं तु देयमेव। सप्तेति रूपमित्यनुषज्यते।

अनुवाद—रूपके लक्षणमें 'गुण' पद नहीं देंगे तो 'यो गुणो यदिन्द्रियेण गृह्यते तन्निष्ठा जातिरपि तदिन्द्रियेण गृह्यते' अर्थात् जो गुण जिस इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है, उस(गुण)में रहनेवाली जाति भी उस इन्द्रियसे ग्रहण की जाती है। इस नियमके अनुसार रूपत्व जातिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके

---

१. दूसरेको प्रकाशित करनेवाले रूपको 'भास्वर' कहते हैं।

लिए 'गुण' पद दिया है । केवल 'ग्राह्य' लिखेंगे तो रस आदि भी रसना इत्यादि-से ग्राह्य है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः 'चक्षुर्ग्राह्यः' लिखा गया, सो इसके चक्षुसे ग्राह्य न होनेसे दोष नहीं । क्योंकि रस तो रसना(इन्द्रिय)से ग्राह्य है । अब 'मात्र' पद नहीं देंगे अर्थात् 'चक्षुर्ग्राह्यः' इतना ही दें तो संख्या आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि संख्या आदि भी चक्षुसे ग्राह्य हैं, अतः 'मात्र' पद देनेसे उसमें अतिव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि संख्या केवल इन्द्रियसे भी ग्रहण की जाती है, आँखोंको मूँदकर छूनेसे भी उसका ग्रहण किया जाता है ।

यद्यपि प्रभा (सूर्यतेज) और भित्तिका संयोग भी चक्षुसे ग्राह्य है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए गुण पदसे विशेष गुणकी विवक्षा होनेसे उसीसे संख्या आदिका निवारण होनेसे 'मात्र' पद व्यर्थ है । जैसे कि विशेष गुण हैं—

'बुद्ध्यादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः ।
अदृष्टभावना शब्दा अमी वैशेषिका गुणाः ॥'—भा० प० ९०

अर्थात् बुद्धि आदि छः (बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और यत्न), स्पर्श तक (रूप, रस, गन्ध और स्पर्श), स्नेह, सांसिद्धिक (स्वाभाविक) द्रव, अदृष्ट (धर्म और अधर्म), भावना और शब्द ये सोलह विशेष गुण हैं । इस प्रकार रूप विशेष गुण है परन्तु संयोग और संख्या आदि विशेष गुण नहीं हैं, इसी तरहसे इनमें अतिव्याप्ति नहीं होगी, अतः 'मात्र' पद व्यर्थ है । परन्तु सांसिद्धिक द्रवत्वमें लक्षण घटित होनेसे अतिव्याप्ति होगी । इसलिए 'मात्र' पद आवश्यक है अर्थात् जलमें रहनेवाला सांसिद्धिक द्रवत्व भी विशेष गुण है, उसमें लक्षणकी अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'मात्र' पद आवश्यक है । सांसिद्धिक द्रवत्वका स्पर्शसे भी ग्रहण होनेसे 'मात्र' पद उसकी निवृत्ति करता है । वास्तवमें परमाणुरूप चक्षुमात्र ग्राह्य नहीं है, इसलिए इस लक्षणमें अव्याप्ति पड़ेगी, इसलिए उसकी निवृत्तिके लिए 'चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वे सति गुणत्वम्' ऐसा लक्षण कर 'विशेष' पद नहीं देना चाहिए । इस प्रकार चक्षु मात्रसे ग्रहण की जानेवाली रूपत्व जातिका आश्रय परमाणुरूप भी होगा, अतः अव्याप्ति नहीं पड़ेगी ।

अब लक्षणमें 'गुण' पद नहीं देंगे तो त्र्यणुकमें अतिव्याप्ति होगी, उसको हटानेके लिए 'गुण' पद दिया गया है ।

तीन द्व्यणुकोंसे त्र्यणुक होता है, वह जन्य द्रव्यका अवयव द्रव्य है गुण नहीं, अतः 'गुण' पद चरितार्थ है ।

सप्तेति । 'सप्तविधम्' के अनन्तर 'रूपम्' इस पदका भी निवेश करना चाहिए ।

रसस्य लक्षणं भेदाश्च—

रसनाग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुरा-ऽम्ल-लवण-कटु-कषाय-तिक्त-भेदात् षड्विधः । पृथिवीजलवृत्तिः । तत्र पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ।

अनुवाद—रसना इन्द्रिय(जीभ)से ग्रहण किये जानेवाले गुणको 'रस' कहते हैं । वह मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कटु (कड़वा), कषाय (चरपरा) और तिक्त (तीखा)—इन भेदों से छः प्रकारका है । रस पृथिवी और जलमें रहता है । उनमें पृथिवीमें मधुर आदि छः प्रकार के रस रहते हैं । जलमें केवल मधुर रस रहता है ।

रसनेति । **रसत्वादिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय रसनेति । पृथिवीजलयोरित्यर्थः । षड्विध इति । अत्र रस इत्यनुवर्तते ।**

अनुवाद–रसनेति । रसका लक्षण है—'रसनाग्राह्यत्वे सति गुणत्वं रसत्वम्' । यहाँपर 'गुणत्वम्' यह पद नहीं देंगे तो 'यो गुणो येनेन्द्रियेण गृह्यते तेनैवेन्द्रियेण तन्निष्ठा जातिरपि गृह्यते' अर्थात् जो गुण जिस इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है, उसी इन्द्रियसे उस गुणकी जातिका भी ग्रहण किया जाता है, इस नियमसे रस गुणका रसन इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है, उसी इन्द्रियसे (रसनसे) रसत्व जातिका भी ग्रहण किया जायेगा । अतः अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुण' पदका ग्रहण किया गया है । रसत्व जाति गुण नहीं है, अतः अतिव्याप्ति नहीं । अब 'रसना' न लिखकर केवल 'ग्राह्य' पद दें तो रूप आदि भी ग्राह्य हैं, उनमें अतिव्याप्ति पड़ेगी, उसे हटानेके लिए 'रसना' पद दिया गया । रूप रसनासे ग्राह्य गुण नहीं है, चक्षु-इन्द्रियसे ग्राह्य है । तत्रेति । पृथिवी और जलमें रस रहता है । षड्विध इति । 'षड्विधः' इसके बाद 'रसः' यह पद देना चाहिए ।

गन्धस्य लक्षणं, तस्य भेदौ च—

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः— सुरभिरसुरभिश्च । पृथिवीमात्रवृत्तिः ।

अनुवाद—घ्राण इन्द्रियसे ग्रहण किये जानेवाले गुणको 'गन्ध' कहते हैं । उसके दो भेद हैं—सुरभि (सुगन्ध) और असुरभि (दुर्गन्ध) । गन्धका लक्षण है—'घ्राणग्राह्यत्वे सति गुणत्वम्' । गन्ध केवल पृथिवीमें रहता है ।

घ्राणेति। गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इ[ति]। रूपादावतिव्याप्ति-वारणाय घ्राणग्राह्य इति। पृथिवीति। पृथिवीसम्बन्धसत्त्वे गन्धप्रतीतिसत्त्वं, पृथिवीसम्बन्धाऽभावे गन्धप्रतीत्यभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव जले प्रतीतिर्बोध्या। एवं वायावपि। ननु देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसम्बद्धपवनस्य एतद्देशे असत्त्वात् तत्सम्बन्धाऽभावाद् गन्धवतीत्यनुपपत्तिः। न च वाय्वानीत-त्र्यणुकादिसम्बन्धोऽस्त्येव इति वाच्यम्, कस्तूर्या न्यूनताऽऽपत्तेः कुसुमस्य च सच्छिद्रत्वापत्तेः इति चेत् न। भोक्त्रदृष्टविशेषेण पूर्ववत् त्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तेः। कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथात्वम् इति।

अनुवाद—घ्राणेति। जो गुण जिस इन्द्रियसे ग्राह्य है, उसी इन्द्रियसे उस गुणकी जाति ग्राह्य होती है, इस नियमके अनुसार घ्राण इन्द्रियसे ग्रहण की जानेवाली गन्धत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुण' पद दिया गया है। 'घ्राणग्राह्यः' न लिखकर 'गुणो गन्धः' ऐसा लिखेंगे तो रूप आदिमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'घ्राणग्राह्यः' लिखा गया है। रूप आदि घ्राणग्राह्य नहीं, इसलिए अतिव्याप्ति नहीं होती है।

पृथिवीति। 'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम्'='अन्वयः' 'तदभावे तदभावः'='व्यति-रेकः' अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्तिके इस नियमके अनुसार पृथ्वीका सम्बन्ध होनेपर गन्धकी प्रतीति होना और पृथ्वीका सम्बन्ध न होनेपर गन्धकी प्रतीति न होना, इस प्रकार पृथ्वीके गन्धकी ही प्रतीति जलमें हो जाती है।

इसी तरह वायुमें भी पृथ्वीके गन्धकी ही प्रतीति होती है। अब यहाँ शङ्का होती है कि दूसरे देशमें स्थित कस्तूरी वा कुसुम(फूल)से सम्बद्ध वायुका इस देशमें सम्बन्ध न होनेसे गन्धकी प्रतीति कैसे होती है? वायुसे लाये गये कस्तूरी वा कुसुमके त्र्यणुक (जन्य द्रव्यका अवयव) आदिका सम्बन्ध हुआ है, यह भी कहना चाहिए। कस्तूरीकी न्यूनता और फूलमें छिद्र हो जाना चाहिए, यह भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि भोक्ताके अदृष्टविशेषसे पहलेके समान दूसरे त्र्यणुक आदिकी उत्पत्ति हो जाती है, तब कर्पूर आदिमें उसी तरह दूसरे त्र्यणुक आदिकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती है? इसका समाधान यह है कि कर्पूर आदिमें पूर्ववत् भोक्ताका अदृष्ट न होनेसे दूसरे त्र्यणुककी उत्पत्ति नहीं होती है।

परमाणु वा द्व्यणुकके रूप, रस, गन्धका प्रत्यक्ष न होनेसे यहाँ त्र्यणुकका ग्रहण किया गया है।

स्पर्शस्य लक्षणं भेदाश्च—

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः। स च त्रिविधः—शीतोष्णाऽनुष्णाऽशीतभेदात्। पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः। तत्र शीतो जले, उष्णस्तेजसि, अनुष्णाऽशीतः पृथ्वीवाय्वोः।

अनुवाद—स्पर्शका लक्षण है—'त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यत्वे सति गुणत्वं स्पर्शत्वम्' अर्थात् त्वक् इन्द्रिय मात्रसे ग्रहण किये जानेवाले गुणको 'स्पर्श' कहते हैं। शीत, उष्ण और अनुष्णाऽशीतके भेदसे स्पर्शके तीन भेद होते हैं। स्पर्श पृथ्वी, जल, तेज और वायुमें रहता है। उनमें शीत स्पर्श जलमें, उष्ण स्पर्श तेजमें और अनुष्णाऽशीत (न उष्ण और न शीत) स्पर्श पृथ्वी और वायुमें रहता है।

त्वगिन्द्रियेति। स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय त्वगिन्द्रियेति। संख्याऽऽदिवारणाय मात्रपदम्। तत्रेति। पृथिव्यादिचतुष्टये। शीत इति। शीतः स्पर्शः। उष्ण इति। उष्णः स्पर्शः।

अनुवाद—त्वगिति। 'जो गुण जिस इन्द्रियसे ग्राह्य होता है, उसी इन्द्रियसे उस गुणकी जाति भी ग्राह्य होती है' इस नियमसे स्पर्शत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुण' पद दिया है। 'गुणः स्पर्शः' इतना ही लिखेंगे तो रूप आदि भी गुण हैं, उनमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'त्वगिन्द्रियग्राह्यः' लिखा गया है। संख्या आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'मात्र' पद दे दिया गया है, वह चक्षु इन्द्रियसे भी ग्राह्य है। तत्र = पृथिवी आदि चारोंमें। शीत इति। शीत= स्पर्श। उष्ण इति। उष्ण = स्पर्श।

पाकजत्वस्य अपाकजत्वस्य च व्यवस्था—

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च। अन्यत्राऽपाकजं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्।

अनुवाद—रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पृथिवीमें पाकसे उत्पन्न और अनित्य हैं। विजातीय तेजके संयोगको 'पाक' कहते हैं! रूप आदि पृथ्वीसे भिन्न आश्रयमें अपाकज हैं और नित्य तथा अनित्य भी हैं। नित्य(परमाणु)के रूप आदि नित्य है और अनित्य(कार्य द्रव्य)में रहनेवाले अनित्य हैं।

संख्याया लक्षणम्—

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या। सा नवद्रव्यवृत्तिः, एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता। एकत्वं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्। द्वित्वादिकं तु सर्वत्राऽनित्यमेव।

अनुवाद—संख्याका लक्षण है—'एकत्वादिव्यवहारहेतुत्वे सति गुणत्वं संख्यात्वम्।' अर्थात् एकत्व आदि व्यवहारके हेतु गुणको 'संख्या' कहते हैं। वह पृथिवी आदि नवों द्रव्योंमें रहती है तथा एकसे लेकर परार्ध तक है। एकत्वके दो भेद होते हैं—नित्य और अनित्य। नित्य (द्रव्य) परमाणु आदिमें रहनेवाला एकत्व नित्य है। अनित्य (कार्य) द्रव्यमें रहनेवाला एकत्व अनित्य है। द्वित्व आदि तो सर्वत्र (नित्यमें तथा अनित्यमें) अनित्य ही है।

एकत्वादीति। एकत्वम् इत्यादिर्यो व्यवहार एको द्वौ बहव इत्याद्यात्मकः, तस्य हेतुः संख्येत्यर्थः। घटादिवारणाय एकत्वादीति। कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम्। ननु संख्याया अवधिः अस्ति न वा इत्यत आह—एकत्वादीति। तथा च—

'एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च॥
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥'

इति महदुक्तेः परार्धपर्यन्तैव संख्या इति भावः।

अनुवाद—एकत्वादीति। एकत्व इत्यादि जो व्यवहार एक, दो, बहुत इत्यादि स्वरूपवाला है, उसके कारणको 'संख्या' कहते हैं। केवल 'व्यवहारहेतुः' कहेंगे तो व्यवहारके हेतु घट आदिमें अतिव्याप्ति होगी, उसको हटानेके लिए 'एकत्वादि' कहा गया। एकत्व आदि व्यवहारके साधारण कारण काल आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद भी देना चाहिए। तब 'एकत्वादिव्यवहारस्य असाधारणकारणत्वं संख्यात्वम्' अर्थात् एकत्व आदि व्यवहारके असाधारण कारणको 'संख्या' कहना चाहिए, ऐसा लक्षण हुआ। संख्याकी सीमा है कि नहीं ? इस शंकाको हटानेके लिए कहते हैं– एकत्वादीति। जैसे–एक, दश, शत (सौ), सहस्र (हजार), अयुत (दश हजार), लक्ष (लाख), नियुत (दश लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्ध—इतनी संख्याएँ दशगुनी वृद्धिसे जाननी चाहिए। ऐसी महापुरुषकी उक्तिसे एकसे लेकर परार्ध तक संख्याएँ हैं।

परिमाणस्य लक्षणं, तद्भेदाश्च—

मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणं, नवद्रव्यवृत्तिः। तच्चतुर्विधम्– अणु, महत्, दीर्घं ह्रस्वं चेति।

अनुवाद—मान(माप)के व्यवहारके असाधारण कारणको 'परिमाण' कहते हैं, वह नवों द्रव्योंमें रहता है ।

अणु (पतला), महत् (बड़ा), दीर्घ (लम्बा) और ह्रस्व (नाटा), परिमाणके चार भेद हैं ।

मानेति । मानं=परिमितिः, तस्या व्यवहारः—इदं महत्, इदम् अणु इत्याद्यात्मकः, तस्य कारणं परिमाणमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय मानेति । कालादिवारणाय असाधारणेति । शब्दत्ववारणाय कारणमिति । नवद्रव्येति । चतुर्विधमपि परममध्यमभेदेन द्विविधम् । तत्र परमाणुह्रस्वत्वे परमाणुमनसोः, मध्यमाऽणुह्रस्वत्वे द्व्यणुके । परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ, मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ । एतन्मौक्तिकात् इदं मौक्तिकम् अणु इति व्यवहारस्य अपकृष्टः महत्त्वाश्रयत्वाद् गौणत्वं बोध्यम् । एवमेव केतनाद्व्यजनं ह्रस्वम् इत्यपि निकृष्टदीर्घत्वाद् गौणत्वम् ।

अनुवाद—मानेति । 'मान' परिमाणको कहते हैं, उसका—यह महत् (बड़ा), यह अणु (पतला)—इत्यादि जो व्यवहार है, उसके असाधारण कारणको 'परिमाण' कहते हैं ।

व्यवहारका असाधारण कारण दण्ड आदि भी है, उसमें अतिव्याप्तिको हटानेके लिए 'मान' पद दिया गया है ।

मान-व्यवहारके साधारण कारण काल आदि भी है, उसको हटानेके लिए 'असाधारण' पद दिया गया है ।

मान-व्यवहारकी शब्दत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारण' पद दे दिया गया है ।

नवद्रव्येति । परिमाण चार प्रकारका होकर फिर परम और मध्यमके भेदसे दो प्रकारका होता है । जैसे कि परमाणु और मनमें परमाणुत्व और परमह्रस्वत्व रहते हैं । द्व्यणुकमें मध्यमाणुत्व और मध्यमह्रस्वत्व रहते हैं । आकाश आदिमें परममहत्त्व और परमदीर्घत्व रहते हैं । घट आदिमें मध्यम महत्त्व और मध्यम दीर्घत्व रहते हैं । इस मोतीसे यह मोती अणु (पतला) है, ऐसा व्यवहार निकृष्ट महत्त्वका आश्रय होनेसे गौण है, इसी तरह केतन-(पताका)से पंखा ह्रस्व (छोटा) है, यह व्यवहार भी निकृष्टदीर्घत्वका आश्रय होनेसे गौण है ।

पृथक्त्वलक्षणम्—

पृथग्व्यवहाराऽसाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्तिः ।

अनुवाद—पृथक्त्वका लक्षण है—'पृथग्व्यवहाराऽसाधारणकारणत्वं पृथक्त्वम् ।' अर्थात् पृथक् व्यवहारके असाधारण कारणको 'पृथक्त्व' कहते हैं। वह सब द्रव्योंमें रहता है।

पृथगिति। अयमस्मात् पृथगिति यो व्यवहारः, तस्य कारणं पृथक्त्वमित्यर्थः। दण्डादिवारणाय पृथगित्यादि। कालादिवारणाय असाधारणेति। पृथग्व्यवहारत्ववारणाय कारणमिति।

अनुवाद—पृथगिति। यह इससे पृथक् है, ऐसा जो व्यवहार है, उसके कारणको 'पृथक्त्व' कहते हैं। व्यवहारका असाधारण कारण दण्ड आदि भी हैं, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'पृथक्' पद दिया गया है।

पृथक् व्यवहारका साधारण कारण काल आदि भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद दिया है।

पृथग्व्यवहारत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारण' पदका निवेश किया गया है।

संयोगलक्षणम्—

संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः। सर्वद्रव्यवृत्तिः।

अनुवाद—संयोगका लक्षण है—'संयुक्तव्यवहारहेतुत्वे सति गुणत्वं संयोगत्वम्'। अर्थात् संयुक्त व्यवहारके हेतु गुणको 'संयोग' कहते हैं। वह सब द्रव्योंमें रहता है।

संयुक्तेति। 'इमौ संयुक्तौ' इति यो व्यवहारः, तस्य हेतुः संयोग इत्यर्थः। दण्डादिवारणाय संयुक्तव्यवहारेति। कालादिवारणाय 'असाधारणेत्यपि' देयम्। संयुक्तव्यवहारत्वेऽतिप्रसक्तिवारणाय हेतुरिति। उपदर्शितलक्षणचतुष्टये 'असाधारण'-पदं देयम्। क्वचित्पुस्तके परिमाणपृथक्त्वलक्षणे ईश्वरेच्छादिवारणाय असाधारणेति दृश्यते तत्तु आधुनिकैर्न्यस्तमिति बोध्यम्।

अनुवाद—ये दोनों संयुक्त (संयोगयुक्त) हैं, ऐसा जो व्यवहार है, उसके कारणको 'संयोग' कहते हैं।

व्यवहारका कारण दण्ड आदि भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संयुक्तव्यवहार' पद दिया है।

काल आदि साधारण कारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद भी देना चाहिए। संयुक्तव्यवहारत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'हेतुः'

यह पद दे दिया गया है। समीप दिखलाये गये (संख्या, परिमाण, पृथक्त्व और संयोगके) चारों लक्षणोंमें 'असाधारण' पद देना चाहिए।

किसी पुस्तकमें परिमाण और पृथक्त्वके लक्षणमें ईश्वरेच्छा आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद देखा जाता है। वह आधुनिकों द्वारा रक्खा गया है, यह जानना चाहिए।

विभागलक्षणम्—

संयोगनाशको गुणो विभागः। सर्वद्रव्यवृत्तिः।

अनुवाद—विभागका लक्षण है–'संयोगनाशकत्वे सति गुणत्वं विभागत्वम्।' अर्थात् संयोगके नाशक गुणको 'विभाग' कहते हैं। वह सब द्रव्यों में रहता है।

संयोगेति। **संयोगनाशजनक इत्यर्थः। कालेऽतिप्रसक्तिवारणाय गुणपदम्। ईश्वरेच्छादिवारणाय 'असाधारणे'त्यपि बोध्यम्। ननु असाधारणपदोपादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यादिति चेन्न। क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय तस्याऽपि आवश्यकत्वात्।**

अनुवाद—संयोगेति। संयोगके नाशजनक गुणको 'विभाग' कहते हैं। संयोगका नाशजनक काल भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए गुण' पद दिया है। संयोगका नाशजनक ईश्वरेच्छा आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद देना चाहिए। कार्यमात्रके प्रति ईश्वरेच्छा आदि साधारण कारण हैं; 'असाधारण' पद देनेसे 'गुण' पदकी व्यर्थताकी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि संयोगका नाशजनक क्रियामें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुण' पद आवश्यक है।

परत्वाऽपरत्वयोः सलक्षणा भेदाः—

पराऽपरव्यवहाराऽसाधारणकारणे परत्वाऽपरत्वे। पृथिव्यादिचतुष्टय मनोवृत्तिनी। ते द्विविधे—दिक्कृते कालकृते च। दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्। समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम्। ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम्। कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम्।

अनुवाद—परत्वका लक्षण है—'परव्यवहाराऽसाधारणकारणत्वं परत्वम्'। अर्थात् परव्यवहारके असाधारण कारणको 'परत्व' कहते हैं। अपरत्वका लक्षण है—'अपरव्यवहाराऽसाधारणकारणत्वम् अपरत्वम्'। अर्थात् अपरव्यवहारके असाधारण कारणको 'अपरत्व' कहते हैं। परत्व और अपरत्व ये दोनों दो

प्रकारके हैं—'दिक्कृत (दिशासे किया गया) और कालकृत (कालसे किया गया) ।'

दूरस्थ पदार्थमें दिक्कृत परत्व और समीपस्थ पदार्थमें दिक्कृत अपरत्व रहता है । इसी तरह ज्येष्ठमें कालकृत परत्व और कनिष्ठमें कालकृत अपरत्व रहता है ।

पराऽपरेति । **परव्यवहाराऽसाधारणकारणं परत्वम्, अपरव्यवहाराऽसाधारणकारणम् अपरत्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय परव्यवहारेति । कालादिवारणाय असाधारणेति । परव्यवहारत्ववारणाय कारणेति । एवमेव द्वितीयेऽपि बोध्यम् ।**

अनुवाद—परेति । परत्व और अपरत्व दोनोंके लक्षण तर्कसंग्रहके अनुवादमें दे चुके हैं । दण्ड भी व्यवहारका असाधारण कारण है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'परव्यवहार' पद दिया है । दण्ड घटका असाधारण कारण है, परव्यवहारका असाधारण कारण नहीं । कार्यमात्रका साधारण कारण काल आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद दिया है । परव्यवहारत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारण' पद दिया है । इसी तरह अपरव्यवहारत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारण' पद देना चाहिए ।

गुरुत्वस्य लक्षणम्—

आद्यपतनाऽसमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवीजलवृत्तिः ।

अनुवाद—गुरुत्वका लक्षण है—'आद्यपतनाऽसमवायिकारणत्वे सति गुणत्वं गुरुत्वम्' । आद्य (पहला) पतनके असमवायिकारण गुणको 'गुरुत्व' कहते हैं । वह पृथिवी और जलमें रहता है ।

आद्यपतनेति । **दण्डादिवारणाय असमवायीति । रूपादिवारणाय पतनेति । वेगेऽतिव्याप्तिवारणाय आद्येति ।**

अनुवाद—आद्य पतनके कारण दण्डमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असमवायिकारण' पद दिया है । दण्ड द्रव्य है, अतः वह समवायिकारण है, असमवायिकारण नहीं । रूप आदि असमवायिकारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'पतन' पद दिया है । वेगमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'आद्य' पद दे दिया है । द्वितीय आदि पतनमें 'वेग' असमवायिकारण होता है ।

द्रवत्वस्य सभेदं लक्षणम्—

आद्यस्यन्दनाऽसमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्तिः । तद्

द्विविधं—सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च। सांसिद्धिकं जले, नैमित्तिकं पृथिवी-तेजसोः। पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वं, तेजसि सुवर्णादौ।

अनुवाद—आद्य (पहला) स्यन्दन(चूने)में असमवायिकारण को 'द्रवत्व'' कहते हैं। द्रवत्वका लक्षण है—आद्यस्यन्दनाऽसमवायिकारणत्वे सति गुणत्वं द्रवत्वम्'। द्रवत्व पृथिवी, जल और तेजमें रहता है। वह द्रवत्व दो प्रकारका है—सांसिद्धिक (स्वाभाविक) और नैमित्तिक (कारणजन्य)। सांसिद्धिक द्रवत्व जलमें और नैमित्तिक द्रवत्व पृथिवी और तेजमें रहता है। पृथिवीमें घृत आदिमें अग्निसंयोगसे उत्पन्न द्रवत्व है और तेजमें भी सुवर्ण आदिमें अग्निसंयोगसे उत्पन्न द्रवत्व होता है।

आद्यस्यन्दनेति। दण्डादिवारणाय असमवायीति। रसादिवारणाय स्यन्द-नेति।

अनुवाद—घट आदिके दण्ड आदि कारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असमवायिकारण' पद दिया है। दण्ड आदि द्रव्य होनेसे समवायिकारण है। रस आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'स्यन्दन' पद दे दिया गया है। रस स्यन्दनमें असमवायिकारण नहीं है।

स्नेहस्य लक्षणम्—

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। जलमात्रवृत्तिः।

अनुवाद—स्नेहका लक्षण है—'चूर्णादिपिण्डीभावहेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेह-त्वम्।' अर्थात् चूर्ण आदिके पिण्डत्व कारण गुणको 'स्नेह' कहते हैं। वह केवल जलमें रहता है (स्नेह जलका विशेष गुण है)।

चूर्णादीति। चूर्णं=पिष्टं, तदेव आदिर्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिः, तस्य पिण्डीभावः=संयोगविशेषः, तस्य हेतुः=निमित्तकारणं स्नेह इत्यर्थः। कालादौ अतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम्। रूपादौ अतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति। चूर्णपदं स्पष्टार्थम्।

अनुवाद—चूर्णादीति। चूर्ण=पिष्ट, वह आदि जिस मिट्टी आदिका है, उस चूर्ण आदिका जो पिण्डीभाव (संयोगविशेष), उसका हेतु=जो निमित्तकारण है, उसे 'स्नेह' कहते हैं। चूर्ण आदिके पिण्डीभावका कारण काल आदि भी है, उसमें अतिव्याप्तिको हटानेके लिए 'गुण' पद दिया है, काल आदि गुण नहीं, द्रव्य है। चूर्ण आदिके हेतु रूप आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'पिण्डीभाव' पद दिया है। चूर्ण' पदका अर्थ स्पष्ट है।

शब्दस्य लक्षणं भेदौ च—

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः। आकाशमात्रवृत्तिः। स द्विविधो—ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च। तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः।

अनुवाद—शब्दका लक्षण है—'श्रोत्रग्राह्यत्वे सति गुणत्वं शब्दत्वम्' अर्थात् श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रियसे ग्राह्य गुणको 'शब्द' कहते हैं। वह केवल आकाशमें रहता है (आकाशका विशेष गुण है)।

शब्द दो प्रकारका है—ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। ध्वन्यात्मक भेरी आदि(वाद्यों)के बजानेसे उत्पन्न होता है। वर्णात्मक संस्कृत भाषा आदि स्वरूपवाला है।

श्रोत्रेति। **शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादिवारणाय श्रोत्रग्राह्य इति। वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन तद्भिन्नाऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद् गुणपदमनुपादेयमेव।**

अनुवाद—'जो गुण जिस इन्द्रियमें ग्राह्य है, उसकी जाति भी उसी इन्द्रियसे ग्राह्य होती है' इस नियमके अनुसार शब्दत्व जातिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुण' पद दिया है। 'गुणः शब्दः' ऐसा लक्षण करेंगे तो रूप आदि गुणमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'श्रोत्रग्राह्यः' ऐसा विशेषण दिया गया है। रूप आदि गुण श्रोत्रग्राह्य नहीं हैं। वस्तुतः श्रोत्रदेशमें उत्पन्न शब्द ही श्रोत्रग्राह्य है, उससे भिन्न अन्यत्र उत्पन्न शब्दमें श्रोत्रग्राह्यत्वकी अव्याप्ति होनेसे उसे हटानेके लिए 'श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वं शब्दत्वम्' श्रोत्रग्राह्य जाति जहाँ है, उसीमें शब्दलक्षणका तात्पर्य होनेसे 'गुण' पद आवश्यक नहीं है।

बुद्धेर्लक्षणं, तद्भेदौ च—

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्। सा द्विविधा—स्मृतिरनुभवश्च।

अनुवाद—बुद्धिका लक्षण है—'सर्वव्यवहारहेतुत्वे सति गुणत्वं बुद्धित्वम्।' अर्थात् सम्पूर्ण व्यवहारोंका कारणरूप गुणको 'बुद्धि' कहते हैं। बुद्धिको ज्ञान भी कहते हैं। बुद्धिके दो भेद होते हैं—स्मृति (स्मरण) और अनुभव।

सर्वेति। **बुद्धिलक्षणमाह-सर्वेति। सर्वे ये व्यवहाराः—आहारविहारादयः, तेषां हेतुर्बुद्धिरित्यर्थः। दण्डादिवारणाय सर्वव्यवहारेति। कालादिवारणाय असाधारणेति देयम्।**

अनुवाद—सर्वेति। बुद्धिका लक्षण कहते हैं—सर्व इत्यादि। सम्पूर्ण जो व्यवहार—आहार, विहार आदि हैं, उनकी हेतु बुद्धि है।

दण्ड आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'सर्वव्यवहार' पद दे दिया है। काल आदि साधारण कारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद देना चाहिए।

स्मृतेर्लक्षणम् -

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

अनुवाद—स्मृतिका लक्षण है–'संस्कारमात्रजन्यत्वे सति ज्ञानं स्मृतित्वम्'। अर्थात् संस्कारमात्रसे उत्पन्न ज्ञानको 'स्मृति' (स्मरण) कहते हैं।

संस्कारमात्रेति। संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारजन्यमिति। तथाऽपि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यं विवक्षणीयम्। क्वचित्तथैव पाठः। न चैवं सत्यसम्भवः, तस्य संस्कारजन्यत्वे सति इन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षाऽजन्यार्थकत्वात्।

अनुवाद—संस्कारजन्य तो संस्कारध्वंस भी है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञान' पद दिया गया है। अनुभवमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संस्कारजन्यम्' ऐसा पद दिया है। अनुभव संस्कारका जनक है, संस्कारसे जन्य नहीं है। तो भी प्रत्यभिज्ञामें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संस्कारमात्रजन्य' पदकी विवक्षा करनी चाहिए। कहीं (मूल पुस्तक=तर्कसंग्रहमें) ऐसा ही पाठ है। स्मृति और अनुभवसे युक्त ज्ञानको 'प्रत्यभिज्ञा' कहते हैं। जैसे—'सोऽयं देवदत्तः' वह यह देवदत्त है। यहाँ 'सः' (वह) इस अंशमें स्मृति है और 'अयम्' (यह) इस अंशमें अनुभव है। यहाँपर प्रत्यभिज्ञामें 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि स्थलमें संस्कारमात्रजन्य ज्ञान नहीं है, अनुभव भी है, इसलिए अतिव्याप्ति नहीं है। यहाँपर सन्देह होता है कि कार्यमात्रके प्रति काल आदि साधारण कारण हैं तो. वे ज्ञानके प्रति भी कारण हैं, तो संस्कारमात्रजन्य कोई ज्ञान नहीं होगा तो असंभव दोष होगा, इसका समाधान यह है कि 'संस्कारमात्रजन्यत्वम्' इसका तात्पर्य है—'संस्कारजन्यत्वे सति इन्द्रियार्थसन्निकर्षाऽजन्यत्वम्' अर्थात् संस्कारसे जन्य होकर जो इन्द्रिय और अर्थ(पदार्थ)के सन्निकर्षसे जन्य न हो। तब प्रत्यभिज्ञामें यह लक्षण घटित नहीं होता है, क्योंकि वह संस्कारसे जन्य तो है, पर इन्द्रिय और अर्थके सन्निकर्षसे जन्य है, अजन्य नहीं। इसके विपरीत स्मृति संस्कारसे जन्य है, पर इन्द्रिय और अर्थके सन्निकर्षसे जन्य नहीं।

अनुभवस्य लक्षणम्—

तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधः—यथार्थोऽयथार्थश्च।

अनुवाद—अनुभवका लक्षण है—'स्मृतिभिन्नज्ञानत्वम् अनुभवत्वम्'। अर्थात् स्मृतिसे भिन्न ज्ञानको 'अनुभव' कहते हैं। वह दो प्रकार का है-यथार्थ और अयथार्थ।

तदिति। स्मृतित्वाऽवच्छिन्नमित्यर्थः। तेन यत्किञ्चित् स्मृतिभिन्नत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः। घटादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। स्मृतिवारणाय तद्भिन्नमिति।

अनुवाद—तदिति। 'तत्' पदसे स्मृतित्वाऽवच्छिन्न ज्ञान समझना चाहिए। स्मृतित्वजात्यवच्छिन्नभिन्न ज्ञानको अनुभव कहते हैं, यह इसका अर्थ हुआ। उससे स्मृतिकी दूसरी स्मृतिसे भिन्न होनेपर अनुभवमें अतिव्याप्ति नहीं होती। क्योंकि घटस्मृति, पटस्मृति आदि स्मृतियोंकी भिन्नता होनेपर भी स्मृतित्व जाति सब स्मृतियोंमें अनुस्यूत है। अतः स्मृतित्वजातिविशिष्टभिन्न ज्ञान अनुभव हो गया। स्मृतिसे भिन्न घट आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञानम्' कहना चाहिए। स्मृति भी ज्ञान है, इसलिए उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तद्भिन्नम्' ऐसा विशेषण दिया है।

यथार्थाऽनुभवस्य लक्षणमुदाहरणं च—

तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः। यथा—रजते 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते।

अनुवाद—जिसमें जो है, वहाँ उसका जो अनुभव है, उसे 'यथार्थाऽनुभव' कहते हैं। यथार्थानुभवका लक्षण है–'तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः' अर्थात् तत् पदसे लिया गया रजतत्व, रजतत्ववान् (रजतत्ववाला) हुआ रजत, रजतत्व प्रकार (विशेषण) वाला ज्ञान हुआ 'इदं रजतम्' (यह चाँदी है) उसमें ऐसा ज्ञान, उसीको 'प्रमा' कहते हैं।

तद्वतीति। तद्वति तत्प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थः। तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारक इति यावत्। स्मृतिवारणाय अनुभव इति। अयथार्थाऽनुभववारणाय तद्वतीति। निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्प्रकारक इति।

अनुवाद—तद्वतीति। तत् पदसे पदार्थमें रहनेवाले किसी धर्मको लेना चाहिए। 'तद्वान्' का अर्थ हुआ—किसी धर्मसे युक्त कोई पदार्थ। 'प्रकार' का अर्थ है विशेषण। इसी बातको उदाहरण देकर समझाते हैं। 'जैसे–'तत्' पदका अर्थ हुआ है 'रजतत्व' अर्थात् रजत(चाँदी)में रहनेवाला धर्म। इस प्रकार 'तद्वान्' का अर्थ हुआ 'रजतत्व' धर्मसे युक्त पदार्थ, वह हुआ रजत। क्योंकि

रजतत्व धर्म रजतमें ही रहता है, उसमें तत्प्रकारकः = तत् (रजतत्वम्) प्रकारः (विशेषणम्) यस्मिन् तत्प्रकारकः, अर्थात् रजतमें रजतत्व विशेषणवाले ज्ञानको 'यथार्थ' कहते हैं। सारांश यह है रजतमें 'इदं रजतम्' यह रजत है, ऐसे ज्ञानको यथार्थ ज्ञान कहते हैं।

इसी बातको और स्पष्ट करके बताते हैं—'तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारकः' अर्थात् तत् (रजतत्व) वाले (रजत) विशेष्यमें तत् (रजतत्व) प्रकार (विशेषण) वाला ज्ञान, वह हुआ रजतमें 'इदं रजतम्' ऐसा ज्ञान, उस ज्ञानको 'यथार्थाऽनुभव' कहते हैं। रजतत्व विशेषण है और रजत विशेष्य है। यथार्थ स्मृतिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अनुभव' पद दिया है। अयथार्थाऽनुभवमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तद्वति' पद दिया है। अयथार्थाऽनुभव—'अतद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवः' होता है।

निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तत्प्रकारकः' पद दिया है। निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें प्रकारज्ञान नहीं रहता।

अयथार्थाऽनुभवस्य लक्षणमुदाहरणं च—

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा—शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। सैवाऽप्रमेत्युच्यते।

अनुवाद—जिसमें जो नहीं है, वहाँ उसका जो अनुभव है, उसे 'अयथार्था-ऽनुभव' कहते हैं। जैसे-तत् पदसे लिया गया रजतत्व (रजतका धर्म), उसका अभाववान्=अभाववाला हुआ शुक्ति (सीपी), उसमें तत् पदसे लिया रजतत्व, वह है प्रकार (विशेषण) जिस अनुभव में, जैसे—शुक्ति(सीपी)में 'इदं रजतम्' (यह चाँदी है) ऐसा ज्ञान। शुक्तिमें शुक्तित्व है, रजतत्व नहीं। इसको 'अयथार्थज्ञान' और 'अप्रमा' भी कहते हैं।

तदभावेति। तद्भाववद्विशेष्यकतत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थाऽनुभव इत्यर्थः। यथा—शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। स्मृतिवारणाय अनुभव इति। यथार्थाऽनुभवेऽतिव्याप्तिनिरसनाय तदभाववतीति। निर्विकल्पकवारणाय तत्प्रकारक इति।

अनुवाद—तदभावेति। यहाँ 'तत्' पदका अर्थ है रजतत्व (रजत पदार्थका धर्म), उसका अभाववान् विशेष्य है शुक्ति (सीपी), उसमें 'तत्' पदका अर्थ हुआ रजतत्व, वह विशेषण जिसमें है, अर्थात् शुक्तिमें 'इदं रजतम्' यह ज्ञान, इसे 'अयथार्थाऽनुभव' कहते हैं। शुक्तिमें शुक्तित्व धर्म है, रजतत्व नहीं, रजतत्व तो रजतमें रहता है। अयथार्थाऽनुभवको 'अप्रमा' भी कहते हैं।

स्मृतिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अनुभवः' यह पद दिया है। यथार्थाऽनुभवमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तदभाववति' यह पद दिया है। निर्विकल्पककी अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तत्प्रकारकः' यह पद दिया है। प्रकारताशून्य ज्ञानको 'निर्विकल्पक' कहते हैं।

यथार्थानुभवभेदाः—

यथार्थाऽनुभवश्चतुर्विधः—प्रत्यक्षाऽनुमित्युपमितिशाब्दभेदात्।

अनुवाद—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्द—इनके भेदसे यथार्थानुभव चार प्रकारका होता है।

यथार्थेति। यथार्थाऽनुभवः प्रत्यक्षमेव चार्वाकाः। अनुमितिरपि इति कणादबौद्धौ। उपमिति इति नैयायिकदेशिनः। शब्दमपि इति नैयायिकाः। अर्थापत्तिरपि इति प्राभाकराः। अनुपलब्धिरपि इति भाट्टवेदान्तिनौ। साम्भवैतिह्यकौ अपि इति पौराणिकाः। चैष्टिकोऽपि इति तान्त्रिकाः। एतेषां मतेऽस्वरसं सम्भाव्य तस्य चातुर्विध्यं दर्शितम्।

अनुवाद—यथार्थेति। प्रत्यक्ष ही यथार्थानुभव है, यह चार्वाकके अनुयायी कहते हैं। कणाद (मुनि) और बौद्ध अनुमितिको भी यथार्थाऽनुभव मानते हैं। कतिपय नैयायिक उपमितिको भी यथार्थाऽनुभव मानते हैं। नैयायिकोंके मतमें शब्दज्ञान भी यथार्थानुभव है। प्रभाकर मीमांसकके अनुयायी अर्थापत्तिको भी यथार्थानुभव मानते हैं। भाट्ट (कुमारिलभट्टके अनुयायी मीमांसक) और वेदान्ती अनुपलब्धिको यथार्थ ज्ञान मानते हैं, पौराणिकोंके मतमें सम्भव और ऐतिह्य भी यथार्थानुभव हैं। तान्त्रिक (तन्त्रशास्त्री) चेष्टाको भी यथार्थानुभव मानते हैं। ग्रन्थकार (अन्नम्भट्ट), इनके मतमें अभिरुचिकी सम्भावना कर यथार्थानुभवके चार भेद दिखलाते हैं।

यथार्थाऽनुभवकरणानामपि चातुर्विध्यम्—

तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षाऽनुमानोपमानशब्दभेदात्।

अनुवाद—यथार्थानुभवके करण भी चार प्रकारके हैं। जैसे—प्रत्यक्षका करण प्रत्यक्ष, अनुमितिका अनुमान, उपमितिका उपमान और शाब्दका करण शब्द है।

तदिति। यथार्थाऽनुभवात्मकप्रमायाः करणमित्यर्थः।

अनुवाद—तदिति। यथार्थाऽनुभवस्वरूप प्रमाके चार करण हैं, यह

तात्पर्य है। मीमांसक और वेदान्ती अर्थापत्तिको पाँचवाँ प्रमाण मानते हैं। 'देवदत्त पुष्ट है, पर वह दिनमें नहीं खाता है' यहाँपर उपपाद्य(पुष्टत्व.)के ज्ञानसे उपपादक(रात्रिभोजन)की कल्पना अर्थापत्ति प्रमाणसे होती है, यह उन लोगोंका कहना है। परन्तु नैयायिक लोग इसे स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मानते। वे लोग अर्थापत्तिको व्यतिरेकव्याप्तिसे अनुमानमें अन्तर्भाव करते हैं। इसी प्रकार मीमांसक और वेदान्ती अभावज्ञानके लिए अनुपलब्धिको छठाँ प्रमाण मानते हैं। परन्तु नैयायिक अनुपलब्धिसे सहकृत इन्द्रियसे ही अभावज्ञान होनेसे अनुपलब्धिको पृथक् प्रमाण नहीं मानते। इसी तरह पौराणिक सम्भवको सातवाँ और ऐतिह्यको आठवाँ प्रमाण मानते हैं। नैयायिक 'ब्राह्मणमें विद्या सम्भव है और हजार रुपयोंमें सौ रुपये सम्भव है, इस प्रमाणसे सम्भव भी अनुमान ही है, पृथक् प्रमाण नहीं' ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार पौराणिक 'इस वट (बरगद) वृक्षमें यक्ष हैं' ऐसे परम्परागत वाक्यको ऐतिह्य प्रमाण मानते हैं। नैयायिकोंके मतमें यह ऐतिह्य आप्त(यथार्थवक्ता)से कहा गया है तो शब्द प्रमाण है, आप्तसे नहीं कहा गया है तो प्रमाण ही नहीं है, इस प्रकार ऐतिह्यको पृथक् प्रमाण नहीं मानते।

इस प्रकार तान्त्रिक चेष्टाको नवम प्रमाण मानते हैं। गूँगा या गायक आदिके शब्दका स्मारक या अनुमापक हाथ आदिकी क्रियाको चेष्टा कहते हैं, इसका भी अनुमानमें ही अन्तर्भाव होता है, यह स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, ऐसा नैयायिकोंका मत है।

करणलक्षणम्—

असाधारणं कारणं करणम्।

अनुवाद—असाधारण कारणको 'करण' कहते हैं। कार्यमात्रके प्रति साधारण कारण आठ माने गये हैं, जैसे—ईश्वर, उनका ज्ञान, इच्छा और कृति (प्रयत्न), प्रागभाव (पदार्थकी उत्पत्तिके पूर्व होनेवाला अभाव), कालदिशा और अदृष्ट (धर्म और अधर्म)। कोई प्रतिबन्धकसामान्याऽभावको भी 'साधारण कारण' मानते हैं।

असाधारणमिति। कालादिवारणाय असाधारणमिति। व्यापारेऽतिव्याप्ति वारणाय व्यापारवदित्यपि देयम्। व्यापारश्च द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः। ईश्वरेच्छादिवारणाय तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः ईश्वरेच्छा-

दिवारणाय तज्जन्यत्वे सतीति। कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्यापि अस्ति तत्राऽतिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम्। दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्यजनक इति।

अनुवाद—काल आदि साधारण कारणोंमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद दिया गया है। व्यापारमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'व्यापारवत्' पद भी देना चाहिए। घटरूप कार्यके प्रति चक्रकी भ्रमण-क्रिया (व्यापार) भी असाधारण कारण है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'व्यापारवत्' पद भी देना चाहिए। व्यापार तो व्यापार ही है, व्यापारवान् नहीं।

व्यापारका लक्षण करते हैं—'द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं व्यापारत्वम्'। अर्थात् द्रव्यसे भिन्न होकर, कारणसे जन्य होकर जो कारणजन्य(कारणसे उत्पन्न)का जनक (उत्पादक) है, उसे 'व्यापार' कहते हैं। ईश्वरकी इच्छा आदि साधारण कारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तज्जन्यत्वे सति' ऐसा पद दिया है। ईश्वरकी इच्छा आदि कारणसे जन्य नहीं, स्वयं कारणरूप तथा नित्य है। कुलाल(कुमार)का पुत्र घटके कारण कुलालसे जन्य होकर कुलालजन्य घटका जनक है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'द्रव्याऽन्यत्वे सति' ऐसा विशेषण दिया है। सो कुलालपुत्र द्रव्यसे अन्य (भिन्न) नहीं है, अतः उसमें अतिव्याप्ति नहीं जाती है। दण्डके रूप आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तज्जन्यजनक' यह पद दिया है। द्रव्यका रूप भी द्रव्यसे भिन्न (गुण) है और तत् पदसे घटके कारणरूप दण्डसे जन्य भी है, परन्तु दण्डसे जन्य रूप आदिका जनक नहीं है।

कारणलक्षणम्—

कार्यनियतपूर्ववृत्तिः कारणम्।

अनुवाद—कारणका लक्षण है—'कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम्'। अर्थात् कार्य(उत्पन्न होनेवाले पदार्थ)से जो निश्चितरूपसे पूर्ववृत्ति है, उसे 'कारण' कहते हैं।

कार्येति। कार्यात् नियता=अवश्यम्भाविनी, पूर्ववृत्तिः=पूर्वक्षणवृत्तिर्यस्य तत् तथेत्यर्थः। अनियतरासभादिवारणाय नियतेति। कार्यवारणाय पूर्वेति। दण्डत्वादिवारणाय 'अनन्यथासिद्धत्व'-विशेषणस्य आवश्यकत्वेन तत एव रासभादिवारणसम्भवे नियतपदमनर्थकमेव। एवञ्च अन्यथासिद्धकार्यपूर्ववृत्ति-

कारणम् इति फलितम् । अनन्यथासिद्धत्वम्=अन्यथासिद्धिशून्यत्वम् । अन्यथा-सिद्धिश्च अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वम् । यथा अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिः दण्डादिभिरेव घटरूपकार्यसम्भवे सत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ, तदन्यथासिद्धम् ।

अनुवाद—कार्येति । कार्यसे नियत (अवश्य होनेवाली) पूर्ववृत्ति (पूर्व क्षणमें रहना), जिसका उसे 'कारण' कहते हैं । जैसे—घटरूप कार्यसे अवश्य होनेवाली पूर्ववृत्तिवाला होनेसे दण्ड घटका कारण है । किसी घटकी उत्पत्ति रासभ(गधा)से लायी गयी मिट्टीसे होनेसे रासभ आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'नियत' पद दिया है । समस्त घटकी उत्पत्तिमें रासभ नियत (अवश्य-म्भावी) नहीं है । कार्यमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'पूर्व' पद दिया गया है । घट कार्यके प्रति दण्डत्वकी नियत पूर्ववृत्तिता होनेसे अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अनन्यथासिद्धत्व' यह विशेषण आवश्यक है । 'अनन्यथासिद्ध' का अर्थ है—अन्यथासिद्धिसे शून्य । दण्डत्वके बिना भी घटकार्यकी उत्पत्ति होनेसे घटकार्यके प्रति दण्डत्व अन्यथासिद्ध है । 'अनन्यथासिद्धत्वम्' (अन्यथासिद्धशून्यत्वम्) इस विशेषणसे ही रासभ आदि अन्यथासिद्धिका निवारण—होनेसे 'नियत' पदका कुछ प्रयोजन नहीं । इस प्रकार कारणका लक्षण हुआ—'अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्यपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम्' । 'अनन्यथासिद्धत्वम्' इस पदका अर्थ हुआ—'अन्यथासिद्धिशून्यत्वम्' । अर्थात् अन्यथासिद्ध न होकर जो कार्यसे पूर्ववृत्ति (पहले रहनेवाला) है, उसे कारण कहते हैं ।

आवश्यक नियतपूर्ववर्तीसे ही कार्यकी उत्पत्ति होनेपर उसके साथ होने-वाले धर्मको 'अन्यथासिद्धि' कहते हैं । कुलालपिता आदि अन्यथासिद्धोंमें रहने-वाले धर्मविशेषको 'अन्यथासिद्धि' कहते हैं । आवश्यक नियतपूर्ववर्ती दण्ड आदि कारणोंसे ही घट आदि कार्यकी उत्पत्ति होनेपर, उसके साथ होनेवाले दण्डत्व और दण्डरूप आदि अन्यथासिद्ध कहलाते हैं । ऐसे अन्यथासिद्ध घट आदि कार्य-के कारण नहीं माने जाते ।

कार्यलक्षणम्—

कार्यं प्रागभावप्रतियोगी ।

अनुवाद—कार्यका लक्षण है—'प्रागभागप्रतियोगित्वं कार्यत्वम्' । अर्थात् प्रागभावके प्रतियोगीको 'कार्य' कहते हैं । कार्यकी उत्पत्तिके पहले होनेवाले

अभावको 'प्रागभाव' कहते हैं। जैसे—'इस कपाल(घटके अवयव)में घड़ा होगा' यहाँपर घटकी उत्पत्तिके पहले होनेवाला अभाव प्रागभाव है। 'यस्याऽभावः स प्रतियोगी' इस नियमके अनुसार घटाऽभावका प्रतियोगी घटरूप कार्य होता है।

प्रागिति। कालादिवारणाय 'प्रागि'ति। असम्भववारणाय 'प्रतियोगी'ति।

अनुवाद—'अभावप्रतियोगित्वं कार्यत्वम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो 'अभाव' पदसे अन्योन्याऽभाव भी हो सकता है। तब अन्योन्याभावका प्रतियोगी सकल पदार्थ होगा, सबमें कार्यका लक्षण घुसेगा, तब काल आदि नित्य पदार्थमें अतिव्याप्ति होगी, उसको हटानेके लिए 'प्रागभाव' पद दिया है। 'प्रागभावत्वं कार्यत्वम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो अनादि प्रागभावमें कार्यत्वकी अप्रसक्ति होनेसे असम्भव दोष होगा, उसको हटानेके लिए 'प्रतियोगी' पद दिया गया है।

कारणभेदाः—

कारणं त्रिविधं—समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्।

अनुवाद—कारणके तीन भेद हैं—समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण।

समवायिकारणस्य लक्षणमुदाहरणं च—

यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा—तन्तवः पटस्य, पटश्च स्वगतरूपादेः।

अनुवाद—जिसमें समवायसम्बन्धसे रहकर कार्य उत्पन्न होता है, उसे 'समवायिकारण' कहते हैं। जैसे—तन्तु, पटके और पट, पटके रूप आदिका समवायिकारण हैं।

तन्तुओंमें समवायसम्बन्धसे सम्बद्ध होकर पटकार्य उत्पन्न होता है, इसलिए तन्तु पटके समवायिकारण हैं। इसी तरह पटमें समवायसम्बन्धसे सम्बद्ध होकर पटरूप उत्पन्न होता है, इसलिए पट, पटरूपका समवायिकारण है।

इसी प्रकारसे कपालमें समवायसम्बन्धसे सम्बद्ध होकर घटकार्य उत्पन्न होता है, इसलिए कपाल घटकार्यका समवायिकारण है।

इसी तरह घटमें समवायसम्बन्धसे सम्बद्ध होकर घटरूप उत्पन्न होता है, इसलिए घट, घटरूपका समवायिकारण है। समवायिकारणको वेदान्ती 'उपादान कारण' कहते हैं।

यदिति। यत्समवेतं=यस्मिन् समवायसम्बन्धेन वर्तमानं तदित्यर्थः चक्रादिवारणाय समवेतमिति।

अनुवाद—यदिति। जिसमें समवायसम्बन्धसे वर्तमान होकर कार्य उत्पन्न होता है, वह समवायिकारण है।

केवल 'यस्मिन्' पद दें अर्थात् 'समवेतम्' पद न दें तो जिसमें कार्य उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ होगा, तब चक्र आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए 'समवेतम्' पद दिया। चक्रमें घट समवायसम्बन्धसे वर्तमान नहीं है, प्रत्युत संयोग सम्बन्धसे वर्तमान है। घट अपने अवयव कपालोंमें समवायसम्बन्धसे रहता है, इसलिए घटका समवायिकारण कपाल है, चक्र नहीं।

असमवायिकारणस्य लक्षणमुदाहरणं च—

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं यत्कारणं समवायिकारणम्। यथा—तन्तु-संयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य।

अनुवाद—कार्य अथवा कारणके साथ एक पदार्थमें समवायसम्बन्धसे वर्तमान होता हुआ जो कारण है, वह असमवायिकारण है। जैसे—तन्तुसंयोग पटका और तन्तुरूप पटरूपका असमवायिकारण है।

उदाहरणसे इसको स्पष्ट करते हैं—

१. कार्य-पटके साथ एक पदार्थ तन्तुमें समवायसम्बन्धसे वर्तमान होकर पटका असमवायिकारण हुआ तन्तुसंयोग।

२. इसी प्रकार कारण(पटरूपका कारण पट)के साथ एक पदार्थ तन्तुरूपमें समवायसम्बन्धसे वर्तमान होकर पटरूपका असमवायिकारण हुआ तन्तुरूप। समवायिकारण द्रव्य ही होता है, असमवायिकारण गुण और कर्म होता है।

कार्येणेति। कार्येण कारणेन वा सह एकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति आत्मविशेषणगुणभिन्नत्वे सति यत्कारणं तत् असमवायिकारणम्। तन्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय कार्येणेति। तन्तुरूपादिष्वव्याप्तिवारणाय कारणेनेति। आत्मविशेषणगुणेऽतिव्याप्तिवारणाय आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सतीति। विशेषवारणाय कारणमिति।

अनुवाद—कार्येणेति। असमवायिकारणका लक्षण करते हैं—कार्य अथवा कारणके साथ एक पदार्थमें समवायसम्बन्धसे वर्तमान होकर और आत्माके विशेष गुणोंसे भिन्न होकर जो कारण है, उसे असमवायिकारण कहते हैं। तन्तुसंयोग आदिमें अव्याप्ति हटानेके लिए 'कार्येण' यह पद दिया है।

न्तुरूप आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारणेन' यह पद दिया है। आत्माके विशेष गुणों(इच्छा-द्वेष आदि)में अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'आत्मविशेष-गुणभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण पद दिया है। आत्मामें रहनेवाले विशेष गुण किसीके भी असमवायिकारण नहीं हैं। वे निमित्तकारण माने गये हैं। विशेषमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारणम्' यह पद दिया गया है। नित्य द्रव्योंमें रहनेवाला विशेष कहीं भी कारण नहीं है।

निमित्तकारणस्य लक्षणमुदाहरणं च—

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्। यथा–तुरीवेमादिकं पटस्य।

अनुवाद—निमित्तकारणका लक्षण है—'समवायिकारणाऽसमवायिकारण-भिन्नत्वे सति कारणत्वं निमित्तकारणत्वम्'। अर्थात् समवायिकारण और असमवायिकारणसे भिन्न होकर जो कारण है, उसे 'निमित्तकारण' कहते हैं। जैसे—तुरी (सूत्रवेष्टन करनेकी नली) और वेमा (वायदण्ड) आदि पटके निमित्त कारण हैं।

तदुभयेति। समवाय्यसमवायिकारणवारणाय तदुभयभिन्नमिति। विशे-षादावतिव्याप्तिवारणाय कारणमिति।

अनुवाद—तदुभयेति। समवायिकारण और असमवायिकारणमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तदुभयभिन्नम्' यह पद दिया है। विशेष आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कारणम्' पद दिया है। क्योंकि विशेष और अणुपरिमाण आदि किसीके कारण नहीं।

कारणस्य निष्कृष्टलक्षणम्—

तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम्।

अनुवाद—इन तीन (समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्त-कारण)कारणोंमें जो असाधारण कारण है, वही 'करण' कहलाता है।

तदेतदिति। यस्मात्कारणात् करणत्वघटकं कारणमुपदर्शितं तस्मादेतत्त्रि-विधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव करणमिति भावः। इति कारणप्रपञ्चः।

अनुवाद—तदेतदिति। जिस कारणसे करणत्वका घटक कारण दिखलाया गया है, उस कारणसे इन तीन साधकोंके मध्यमें जो साधकतम (क्रियासिद्धिमें अत्यन्त उपकारक) है, वही करण है, यह भाव है। यह कारणोंका प्रपञ्च (विस्तार) दिखलाया गया है।

प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणम्—

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ।

अनुवाद—उन चार प्रमाणोंमें प्रत्यक्ष ज्ञानके करण(असाधारण कारण) को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं । घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र और मन—ये इन्द्रिय प्रत्यक्ष-प्रमाण हैं ।

तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्ये । दण्डादिवारणाय ज्ञानेति । अनुमानादिवारणाय प्रत्यक्षेति ।

अनुवाद—तत्रेति । प्रत्यक्ष आदि चार प्रमाणोंके मध्यमें । प्रत्यक्ष करण दण्ड आदि भी हैं, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञान' पदका निवेश किया गया है । 'ज्ञानकरणम्' इतना ही कहें तो अनुमिति आदि ज्ञानके करण अनुमान आदिमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए उसे हटानेके लिए 'प्रत्यक्ष' पदका निवेश किया है ।

प्रत्यक्षज्ञानलक्षणम्—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । (ज्ञानाऽकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्) तद् द्विविधं—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति ।

अनुवाद—प्रत्यक्षका लक्षण है—'इन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षजन्यत्वे सति ज्ञानत्वं प्रत्यक्षत्वम्' अर्थात्' इन्द्रिय और पदार्थके सन्निकर्ष(सम्बन्ध)से उत्पन्न ज्ञानको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं । अथवा जिस ज्ञानमें दूसरा ज्ञान करण न हो, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं । उसके दो भेद हैं—निर्विकल्पक और सविकल्पक ।

इन्द्रियार्थेति । इन्द्रियं=चक्षुरादिकम्, अर्थः=घटादिः, तयोः सन्निकर्षः=संयोगादिः, तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षमित्यर्थः । सन्निकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति । अनुमित्यादिवारणाय इन्द्रियार्थसन्निकर्षेति । ननु सोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणम् ? चक्षुषा उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन सह सन्निकर्षाऽभावात् । कथं वा स्वच्छजाह्नवीसलिलावृतमत्स्यादेः चक्षुषा ग्रहणम् ? इति चेत् न, स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाऽभावेन तदन्तः चक्षुःप्रवेशसम्भवात् । न चेश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति वाच्यम्, अत्र जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्षितत्वात् ।

अनुवाद—इन्द्रियाऽर्थेति । इन्द्रिय—चक्षु श्रोत्र, त्वक्, रसन, घ्राण और मन, अर्थ—घट, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और आत्मा आदि इनका सन्निकर्ष-(सम्बन्ध=संयोगसमवाय आदि)में उत्पन्न ज्ञानको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं । सन्निकर्षका

ध्वंस भी सन्निकर्षसे जन्य (उत्पन्न) है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञानम्' यह पद दिया है। केवल 'जन्यं ज्ञानम्' ऐसा लिखें तो अनुमिति आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसको हटानेके लिए 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' पद दिया है। अनुमिति आदिमें इन्द्रिय(नेत्र)का अग्निके साथ सन्निकर्ष (संयोग) नहीं होता है। अब यहाँ एक शङ्का करते हैं—जिसने उपनेत्र (चश्मा) पहना है, उसे कैसे पदार्थका ग्रहण होगा ? क्योंकि नेत्रका चश्मेसे व्यवधान होनेसे घट आदि पदार्थके साथ नेत्रका सन्निकर्ष (सम्बन्ध) नहीं है। इसी तरह गङ्गाजीके निर्मल जलसे आवृत मछली आदिका भी नेत्रके साथ सन्निकर्ष न होनेसे कैसे ग्रहण होगा ? तो इसका उत्तर देते हैं कि स्वच्छ (निर्मल) द्रव्य तेजका निरोधक (व्यवधायक=रोकनेवाला) नहीं होता है, इस कारण उस(स्वच्छ द्रव्य)के भीतर चक्षुका प्रवेश सम्भव है, अतः उप-नेत्र (चश्मा) वा निर्मल जलमें चक्षुका प्रवेश होनेसे कोई बाधा नहीं।

इस लक्षणकी ईश्वरप्रत्यक्षमें अव्याप्तिकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह जन्यप्रत्यक्षका लक्षण है, नित्य ईश्वरप्रत्यक्षका लक्षण नहीं।

जन्यप्रत्यक्ष और ईश्वरप्रत्यक्षमें इन दोनोंका एक ही लक्षण चाहें तो— 'ज्ञानाऽकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्' अर्थात् जिस ज्ञानमें करण नहीं है, वह प्रत्यक्ष है। यही लक्षण उभयसाधारण है।

निर्विकल्पकप्रत्यक्षलक्षणम्—

तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्। यथेदं किञ्चित्।

अनुवाद—उन दोनों प्रत्यक्षोंमें प्रकारतासे शून्य ज्ञानको 'निर्विकल्पक' कहते हैं। जैसे—किसी पदार्थके प्रथम दर्शनमें 'यह कुछ है' ऐसा सामान्य ज्ञान होता है।

टिप्पणी— निर्विकल्पकका लक्षण है—'विशेषणविशेष्यसम्बन्धाऽनवगाहित्वे सति ज्ञानत्वं निर्विकल्पकत्वम्' अर्थात् विशेषण, विशेष्य और सम्बन्धसे शून्य जो ज्ञान है, उसे 'निर्विकल्पक' कहते हैं।

तत्रेति। सविकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय निष्प्रकारकमिति। प्रकारवारणाय ज्ञानमिति।

अनुवाद—तत्रेति। सविकल्पक प्रत्यक्षमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'निष्प्र-कारकम्' ऐसा पद दिया है। 'निष्प्रकारकं प्रत्यक्षम्' ऐसा लिखें तो प्रकार-

(विशेषण)में अतिव्याप्ति होगी । क्योंकि प्रकारमें प्रकार नहीं रहता है। उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञानम्' यह पद दिया है ।

सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा—डित्थोऽयम्, ब्राह्मणोऽयम्, श्यामोऽयमिति ।

अनुवाद—प्रकारतासे युक्त ज्ञानको 'सविकल्पक' कहते हैं ।

टिप्पणी—'सविकल्पक' प्रत्यक्षका लक्षण करते हैं–'नामजात्यादिविशेषण-विशेष्यसम्बन्धाऽवगाहिज्ञानत्वं सविकल्पकत्वम् ।' अर्थात् नाम और जाति आदि विशेषण और विशेष्यके सम्बन्धसे युक्त ज्ञानको 'सविकल्पक' कहते हैं । जैसे— यह डित्थ है, यह ब्राह्मण है, यह श्याम है ।

विषयता तीन प्रकारकी होती है—विशेष्यता, प्रकारता और संसर्गता। जैसे कि 'डित्थोऽयम्' यह डित्थ है, ऐसा प्रत्यक्ष होनेपर 'अयम्' इस पदमें विशेष्यता रहती है, डित्थमें प्रकारता (विशेषणता) और दोनों पदोंके सम्बन्धमें संसर्गता रहती है । इस तरहसे सप्रकारक ज्ञान होनेसे यह सविकल्पक ज्ञान है ।

सप्रकारकमिति । घटादिवारणाय, ज्ञानमिति । निर्विकल्पकवारणाय सप्रकारकमिति ।

अनुवाद—सप्रकारकमिति । घट आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञानम्' ऐसा पद दिया । क्योंकि घटमें घटत्वरूप प्रकारता रहती है । खाली 'ज्ञानम्' यह पद दें, तो निर्विकल्पक ज्ञानमें अतिव्याप्ति होगी । अतः उसे हटानेके लिए 'सप्रकारकम्' ऐसा पद दिया है ।

सन्निकर्षस्य लक्षणं तस्य भेदाश्च—

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षः षड्विधः—संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति ।

अनुवाद—प्रत्यक्ष ज्ञानका कारण इन्द्रिय और अर्थ(पदार्थ)के सन्निकर्ष (सम्बन्ध) छः प्रकार के हैं—१ संयोग, २ संयुक्तसमवाय, ३ संयुक्तसमवेतसमवाय, ४ समवाय, ५ समवेतसमवाय और ६ विशेषणविशेष्यभाव ।

प्रत्यक्षेति । तच्च प्रत्यक्षं षड्विधं—घ्राणज-रासन-चाक्षुष-श्रोत्र-त्वाच-मानसभेदात् । ननु प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियनिष्ठप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः सन्निकर्षः क इत्यपेक्षायां तं विभज्य दर्शयति—प्रत्यक्षेति । लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः ।

अनुवाद—वह प्रत्यक्ष छः प्रकारका है—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, श्रोत्र, त्वाच और मानस। अब प्रत्यक्षज्ञानमें कारण इन्द्रियमें स्थित प्रत्यक्षका जो सामानाधिकरण्य (एकाऽधिकरणवृत्तित्व), उसका घटक सन्निकर्ष (सम्बन्ध) क्या है ?

इस बातकी अपेक्षामें उसे विभाग कर दिखाते हैं—प्रत्यक्षेति। यहाँ प्रत्यक्ष कहनेसे लौकिक प्रत्यक्ष समझना चाहिए।

टिप्पणी—प्रत्यक्षके दो भेद हैं—लौकिक प्रत्यक्ष और अलौकिक प्रत्यक्ष। लौकिक प्रत्यक्षज्ञानका हेतु इन्द्रिय और अर्थ(पदार्थ)का सन्निकर्ष है। अलौकिक प्रत्यक्षके तीन भेद हैं—सामान्यलक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज।

घटादि(द्रव्य)प्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः।

अनुवाद—नेत्र(इन्द्रिय)से घट आदि(द्रव्य)के प्रत्यक्षज्ञानमें संयोग-सन्निकर्ष (सम्बन्ध) है। नेत्र (इन्द्रिय) और घट (आदि पदार्थ) दोनों द्रव्य हैं।

संयोगमुदाहरति—चक्षुषेति। तथा च द्रव्यचाक्षुषत्वाचमानसेषु संयोग एव सन्निकर्ष इति भावः।

अनुवाद—संयोगसन्निकर्षका उदाहरण देते हैं—चक्षुषेति। उस प्रकारसे द्रव्यका चाक्षुष (चक्षु-इन्द्रियसे जन्य) प्रत्यक्ष, त्वाच (त्वगिन्द्रियजन्य) प्रत्यक्ष और मानस (मनसे उत्पन्न) प्रत्यक्षमें संयोग ही सन्निकर्ष होता है। चक्षु इन्द्रियके साथ घटका संयोगसन्निकर्ष होकर जो घटका प्रत्यक्ष होता है, वह द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष है। इसी तरह त्वक् इन्द्रियके साथ शय्या आदि द्रव्यका संयोगसन्निकर्ष होकर त्वाच प्रत्यक्ष होता है और मन इन्द्रियके साथ आत्माका संयोगसन्निकर्ष होकर 'मैं हूँ' ऐसा आत्मप्रत्यक्ष होता है, इस प्रकार द्रव्यके चाक्षुष, त्वाच और मानसप्रत्यक्षमें संयोगसन्निकर्ष होता है।

घटरूपप्रत्यक्षजनने कः सन्निकर्षः—

घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्।

अनुवाद—चक्षु इन्द्रियसे घटके (शुक्ल, नील आदि) रूपका प्रत्यक्ष होनेमें संयुक्तसमवायसन्निकर्ष होता है। चक्षु इन्द्रियसे संयुक्त घटद्रव्यमें रूप-गुण समवायसम्बन्धसे रहता है।

घटरूपेति । चक्षुषा इत्यनुषज्यते । तथा च द्रव्यसमवेतचाक्षुष-त्वाच-मानस-रासन-घ्राणजेषु संयुक्तसमवाय एव सन्निकर्ष इति भावः ।

अनुवाद—घटरूपेति । 'चक्षुषा' इस पदका सम्बन्ध करना चाहिए । इस प्रकार द्रव्यमें समवायसम्बन्धसे रहनेवाले पदार्थका चाक्षुष (चक्षुसे होनेवाले), त्वचा (त्वक्से होनेवाले), मानस (मनसे होनेवाले), रासन (रसनासे होनेवाले) और घ्राणज (घ्राण इन्द्रियसे होनेवाले) प्रत्यक्षमें संयुक्तसमवाय ही सन्निकर्ष होता है ।

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः—

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं, तत्र रूपत्वस्य समवायात् ।

अनुवाद—चक्षुसे रूपत्व जातिके प्रत्यक्षमें संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष है—चक्षु इन्द्रियसे संयुक्त (संयोगसम्बन्धसे वर्तमान) घट(द्रव्य)में रूप (गुण) समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान) है, उस रूप(गुण)में रूपत्व जाति समवायसम्बन्धसे रहती है ।

रूपत्वेति । रूपत्वात्मकं यत् सामान्यं, तत्प्रत्यक्ष इत्यर्थः । अत्राऽपि चक्षुषा इत्यनुषज्यते । यथा च द्रव्यसमवेत-समवेतचाक्षुष-रासन-घ्राणज-स्पार्शन-मानसेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव सन्निकर्ष इति भावः । अथ द्रव्य-तत्समवेतप्रत्यक्षेऽपि संयुक्तसमवेतसमवाय एव सन्निकर्षोऽस्तु इति चेन्नैतत् ईश्वरात्मादेरनध्यक्षत्व-प्रसङ्गात् ।

अनुवाद—रूपत्व जो जाति, उसके प्रत्यक्षमें संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्ष है । यहाँ भी 'चक्षुषा' इस पदका सम्बन्ध करना चाहिए । इस प्रकार द्रव्यमें समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान), जो गुण आदि पदार्थ, उसमें समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान) रूपत्वजाति, उसका चाक्षुष, रासन, घ्राणज, स्पार्शन और मानसप्रत्यक्षोंमें संयुक्तसमवेतसमवाय ही सन्निकर्ष है, यह भाव है

इसी तरह चक्षुःसंयुक्त कपालिका (कपालका अवयव), उसमें समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान) हुआ कपाल, उसमें समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान घटका प्रत्यक्ष), जैसे—संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्षसे होता है, तब संयोग और संयुक्तसमवायसन्निकर्ष क्यों माने जायें ? ऐसी शङ्का होनेपर समाधान करते हैं—संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्षसे ईश्वर और आत्माका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता । ईश्वर आत्मा आदि पदार्थ निरवयव (अवयवशून्य) हैं, मनका

संयोग आत्मासे होता है, आत्मा निरवयव (अवयवशून्य) है, तब मनःसंयुक्त (मनके साथ संयोग होनेवाला) पदार्थ आत्मा ईश्वर आदि है, उसके निरवयव होनेसे वह समवायसम्बन्धसे कहीं नहीं रहता। अतः उसका प्रत्यक्ष नहीं होगा, इस कारण संयोग, संयुक्तसमवाय और संयुक्तसमवेतसमवाय इन तीनों सन्निकर्षोंको मानना आवश्यक है।

शब्दप्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः—

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः। कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वात्, शब्दस्याकाशगुणत्वात्, गुणगुणिनोश्च समवायात्।

अनुवाद—श्रोत्र(इन्द्रिय)से शब्द(गुण)के प्रत्यक्षमें समवायसन्निकर्ष है। कर्णविवर(अवकाश)में रहनेवाला आकाश श्रोत्र है। आकाशका गुण शब्द है और गुणी(द्रव्य)में गुण समवायसम्बन्धसे रहता है।

समवायसन्निकर्षमुदाहरति—श्रोत्रेणेति। जननीय इति शेषः। ननु श्रोत्रशब्दयोः कथं समवाय इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य दर्शयति—कर्णेति। अथ समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापार इति चेत् शब्दः श्रोत्रमनःसंयोगो वेति गृहाण।

अनुवाद—समवायसन्निकर्षका उदाहरण देते हैं—श्रोत्रेणेति। 'शब्दसाक्षात्कारे' इस पदके अनन्तर 'जननीये' इस पदको देना चाहिए। अब श्रोत्र (इन्द्रिय) और शब्द(गुण)का कैसे समवायसन्निकर्ष है? ऐसा जाननेकी अपेक्षा करनेवालेको उसे उपपादन कर मूलमें दिखलाते हैं—कर्णेति। अब समवायसम्बन्धके नित्य होनेसे शब्दके प्रत्यक्षमें कौन-सा व्यापार है? ऐसे प्रश्नका उत्तर देते हैं—शब्दव्यापार या श्रोत्र (इन्द्रिय) और मनका संयोग व्यापार है, ऐसा जानना चाहिए।

शब्दत्वसाक्षात्कारे कः सन्निकर्षः—

शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः, श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्।

अनुवाद– श्रोत्र इन्द्रियसे शब्दत्व जातिके प्रत्यक्षमें समवेतसमवाय सन्निकर्ष है, श्रोत्र(इन्द्रिय)से समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान) शब्दमें शब्दत्व जाति समवायसम्बन्धसे रहती है।

शब्दत्वेति। श्रोत्रेण जननीये इत्यनुकर्षशेषौ।

अनुवाद—'शब्दत्वसाक्षात्कारे' इस पदके पहले 'श्रोत्रेण जननीये' इन दो पदोंका अनुकर्ष करना चाहिए।

अभावप्रत्यक्षे कः सन्निकर्षः—

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः। 'घटाऽभाववद् भूतलम्' इत्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाऽभावस्य विशेषणत्वात्।

अनुवाद—अभावके प्रत्यक्षमें विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष है। 'घटाऽभाववद् भूतलम्' अर्थात् 'घटका अभाववाला भूतल' है, इस ज्ञानमें चक्षु इन्द्रियसे संयुक्त (संयोगयुक्त) भूतल (विशेष्य) में घटाऽभाव विशेषण है।

अभावेति। **विशेषणभावो विशेष्यभावश्चेति बोध्यम्। इन्द्रियसम्बद्धविशेषणत्वम् इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यत्वमिति यावत्। विशेषणभावसन्निकर्षमुपपाद्य दर्शयति—घटाऽभाववदिति। 'इह भूतले घटो नाऽस्ती'त्यादौ विशेष्यता सन्निकर्षोऽसेवयः सप्तम्यन्तस्य विशेषणत्वात्।**

अनुवाद—विशेषणेति। अभावके प्रत्यक्षमें विशेषणभाव और विशेष्यभाव सन्निकर्ष है, यह जानना चाहिए। इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता और इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यता, यह तात्पर्य है। विशेषणभावसन्निकर्षको उपपादन कर दिखलाते हैं—घटाऽभाववदिति। 'घटाऽभाववद् भूतलम्' अर्थात् घटका अभाववाला भूतल, यहाँ पर विशेषणभावसन्निकर्षसे घटाऽभावका प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् (चक्षु) इन्द्रियसे सम्बद्ध भूतलमें घटाऽभाव विशेषणके रूपमें है। इसी तरह 'इह भूतले घटो नाऽस्ति' अर्थात् इस भूतलमें घट नहीं है, यहाँ पर विशेष्यता सन्निकर्षसे घटाभावका प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् (चक्षु) इन्द्रियसे सम्बद्ध भूतल रूप विशेषणमें घटाभाव विशेष्य होता है। सप्तम्यन्त विशेषण होता है।

प्रत्यक्षप्रमाणस्य निष्कृष्टं लक्षणं किम्—

एवं सन्निकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं, तत्करणमिन्द्रियं तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम्।

अनुवाद—इस प्रकार पहले कहे गये संयोग आदि छः सन्निकर्षोंसे उत्पन्न ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। उसका करण (असाधारण कारण) इन्द्रिय है। इस कारणसे इन्द्रिय प्रत्यक्षप्रमाण (प्रत्यक्षप्रमाका करण) है; यह सिद्ध हुआ।

प्रत्यक्षप्रमाणमुपसंहरति—एवमिति। उपदर्शितक्रमेणेत्यर्थः। ननु सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणम् इन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षः किं न स्यादिति चेन्नेत्याह तत्करणमिति। प्रत्यक्षप्रमाणं निगमयति—तस्मादिति। प्रत्यक्षप्रमाणकरणत्वादित्यर्थः। सिद्धमिति। न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः।

अनुवाद --प्रत्यक्षप्रमाणका उपसंहार करते हैं--एवमिति। दिखाये गये छः सन्निकर्षोंके क्रमसे यह तात्पर्य है। प्रश्न करते हैं—सिद्धान्तमें प्रत्यक्षज्ञानका करण इन्द्रिय और अर्थका सन्निकर्ष क्यों नहीं है? इसका उत्तर देते हैं—'तत्करणमि'ति। प्रत्यक्षज्ञानका करण इन्द्रिय है। प्रत्यक्षप्रमाणका निगमन करते हैं—तस्मादिति। प्रत्यक्षप्रमाण करण होनेसे यह तात्पर्य है। सिद्धमिति। न्यायसिद्धान्तमें सिद्ध है, यह तात्पर्य है।

इति प्रत्यक्षखण्डः।

अनुमानलक्षणम्—

अनुमितिकरणमनुमानम्—

अनुवाद—अनुमानका लक्षण करते हैं—'अनुमितिकरणत्वमनुमानत्वम्'। अर्थात् अनुमितिके करण (असाधारण कारण) को 'अनुमान' कहते हैं।

प्रत्यक्षाऽनुमानयोः कार्यकारणभावसङ्गतिमभिप्रेत्य प्रत्यक्षाऽनन्तरमनुमानं निरूपयति—अनुमितीति। अनुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः, तच्च लिङ्गपरामर्श एवेति निवेदयिष्यते। कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय अनुमितीति। प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय अन्विति।

अनुवाद—प्रत्यक्ष और अनुमानमें कार्यकारणभावकी संगतिका अभिप्राय कर प्रत्यक्षके बाद अनुमानका निरूपण करते हैं—अनुमितीति। अनुमितिका करण अनुमान है, यह तात्पर्य है। वह (अनुमान) लिङ्गपरामर्श ही है, यह बतलाया जायेगा। खाली 'करणम्' को अनुमान मानेंगे तो कुठार (फरसा) आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि छेदन-क्रियामें कुठार भी करण (असाधारण कारण) है, उसे हटानेके लिए 'अनुमिति' पद दिया। केवल 'मितिकरणम्' ऐसा कहें तो 'प्रत्यक्षमिति' में अतिव्याप्ति होगी। इसलिए 'अनुमितिकरणम्' ऐसा पद दिया। धूम और वह्नि आदिके साहचर्यका प्रत्यक्ष होनेके अनन्तर अनुमान होनेसे प्रत्यक्षप्रमाणका निरूपण कर अनुमानका निरूपण करते हैं।

अनुमितिलक्षणम्—

परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः।

अनुवाद—अब अनुमितिका लक्षण करते हैं—'परामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्वम् अनुमितित्वम्।' परामर्शसे जन्य (उत्पन्न) ज्ञानको 'अनुमिति' कहते हैं।

ननु अनुमितेरेव दुर्निरूपत्वात्तद्घटिताऽनुमानम् अपि दुर्निरूपमित्यत आह–परामर्शेति। प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शजन्यमिति। परामर्शध्वंसवारणाय ज्ञानमिति। परामर्शप्रत्यक्षवारणाय हेत्वविषयकम् इत्यपि बोध्यम्।

अनुवाद—अनुमितिका ही निरूपण दुष्कर है, तो अनुमितिघटित अनुमानका निरूपण भी दुष्कर है, ऐसी शङ्का कर अनुमितिका लक्षण करते हैं–परामर्शेति। अनुमितिका 'जन्यं ज्ञानम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो प्रत्यक्ष आदिमें अतिव्याप्ति होगी। अतः 'परामर्शजन्यं ज्ञानम्' ऐसा लक्षण किया। अब 'परामर्शजन्यम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो परामर्शसे जन्य परामर्शध्वंसमें अतिव्याप्ति होगी। अतः उसको हटानेके लिए 'ज्ञानम्' ऐसा पद दिया। परामर्शप्रत्यक्षमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'हेत्वविषयकम्' ऐसा पद देना चाहिए।

इसको स्पष्ट करते हैं–'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' 'एतादृशज्ञानवानहम्' अर्थात् वह्निकी व्याप्तिके विषय धूमवाला यह पर्वत है, ऐसे परामर्शका ज्ञानवाला मैं हूँ, ऐसे परामर्शप्रत्यक्षमें विषयतासम्बन्धसे परामर्श कारण है, ऐसे परामर्शसे जन्य परामर्शप्रत्यक्षज्ञानमें पूर्वोक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होगी। उसे हटानेके लिए 'हेत्वविषयकम्' पदका सन्निवेश आवश्यक है, तब तो 'परामर्शजन्यत्वे सति हेत्वविषयकत्वे च सति ज्ञानत्वम् अनुमितित्वम्' अर्थात् परामर्शसे जन्य और हेतुका अविषयक जो ज्ञान है, उसे अनुमिति कहना चाहिए, ऐसा लक्षण करनेसे 'वह्निव्याप्यधूमवान् अयं पर्वतः' इस परामर्शजन्य 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति है, यह लक्षण समन्वय हुआ। 'हेत्वविषयकत्वे सति' कहनेसे परामर्शप्रत्यक्ष अर्थात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् अयं पर्वत एतादृशज्ञानवानहम्' इस ज्ञानमें धूम हेतुका विषय है। अतः अतिव्याप्ति नहीं होगी।

परामर्शस्य लक्षणम्

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः। यथा 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत' इति ज्ञानं परामर्शः। तज्जन्यं 'पर्वतो वह्निमानि'ति ज्ञानमनुमितिः।

अनुवाद—वह्निकी व्याप्तिसे विशिष्ट धूमके पक्षधर्मताज्ञानको 'परामर्श' कहते हैं। जैसे—वह्निका व्याप्य (व्याप्तिविशिष्ट) धूमका अधिकरण (आधार) यह पर्वत है, ऐसे ज्ञानको 'परामर्श' कहते हैं। उस (परामर्श) से उत्पन्न 'पर्वतो वह्निमान्' (पर्वत वह्निवाला है) यह ज्ञान 'अनुमिति' है।

व्याप्तिविशिष्टेति। विषयितासम्बन्धेन व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मताज्ञपरामर्शनं

इत्यर्थः । घटादिज्ञानवारणाय पक्षधर्मतेति । धूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञानवारणाय व्याप्तिविशिष्टेति । तदिति, परामर्शजन्यमित्यर्थः ।

अनुवाद—व्याप्तिविशिष्टेति । विषयितासम्बन्धसे वह्निके व्याप्तिविशिष्ट-(धूम)के पक्षधर्मताज्ञानको 'परामर्श' कहते हैं । 'अयं घटः' यह घट है, ऐसे ज्ञानमें घट विषय है । विषयमें रहनेवाले धर्मको 'विषयिता' कहते है । विषयितासम्बन्धसे पदार्थमें ज्ञान रहता है । इसी तरह 'विषयः अस्याऽस्तीति विषयी' इस व्युत्पत्तिके अनुसार ज्ञानको 'विषयी' कहते हैं । 'विषयिणी भावो विषयिता' अर्थात् विषयी(ज्ञान)में रहनेवाले धर्मको 'विषयिता' कहते हैं । विषयितासम्बन्धसे पदार्थ ज्ञानमें रहता है । विषयितासम्बन्धसे व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मतास्वरूप पदार्थ ज्ञानमें रहता है । अब केवल 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं परामर्शः' ऐसा कहेंगे तो व्याप्तिविशिष्ट घटज्ञानमें अतिव्याप्ति होगी । उसका निवारण करनेके लिए 'पक्षधर्मता' पदका निवेश किया है । अब केवल 'पक्ष-धर्मताज्ञानं परामर्शः' इतना ही कहेंगे तो 'धूमवान् पर्वतः' अर्थात् धूमवाला पर्वत है, इस ज्ञानमें व्याप्य (व्याप्तिविशिष्ट , धूम आदिका पक्ष(पर्वत)में रहनेसे अतिव्याप्ति होगी । उसे हटानेके लिए 'व्याप्तिविशिष्ट' पद दिया है, सो यहांपर 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः' अर्थात् जहाँ-जहाँ धूआँ है वहाँ-वहाँ 'वह्नि है' ऐसी व्याप्ति न होनेसे दोष नहीं है । तदिति=तत् पदका परामर्शसे उत्पन्न यह अर्थ है ।

का नाम व्याप्ति—

'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राऽग्निः' इति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ।

अनुवाद—जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है—इस प्रकार हेतु धूम और साध्य अग्निके साहचर्य(सहभाव)को 'व्याप्ति' कहते हैं ।

यत्र यत्रेति । यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तेरभिनयः । साहचर्य-नियम इति लक्षणम् । सह चरतीति सहचरस्तस्य भावः साहचर्यं = सामानाधि-करण्यमिति । यावत् । तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः । स च अव्यभिचरितत्वं तच्च व्यभिचाराभावः । व्यभिचारश्च साध्याऽभाववद्वृत्तित्वम् । तथा च साध्याऽभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम् । महानसं वह्निमत् इत्यादौ साध्यो वह्निः तदभाववान् जलह्रदादिः, तद्वृत्तित्व नौकादौ । अवृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूम इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः । धूमवान्वह्निरित्यादौ साध्यो धूमः, तदभाववद् अयोगोलकं तद्वृत्तित्वमेव वह्न्यादाविति नाऽतिव्याप्तिः ।

अनुवाद—जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ अग्नि है—यह व्याप्तिका अभिनय है। 'साहचर्यनियमो व्याप्तिः' अर्थात् हेतु और साध्यका साहचर्यनियम व्याप्ति है, यह व्याप्तिका लक्षण है। 'सह चरतीति सहचरः' अर्थात् जो साथ चलता है, वह सहचर है। सहचरके भावको 'साहचर्य' कहते हैं। साहचर्यका पर्याय (समानाऽर्थक शब्द) देते हैं—'सामानाधिकरण्यम्' अर्थात् एक अधिकरण-(आश्रय)में रहना। उसके नियमको 'व्याप्ति' कहते हैं। उस नियमको 'अव्यभिचरितत्व' कहते हैं, अव्यभिचरितत्वका अर्थ है व्यभिचारका अभाव। व्यभिचारका तात्पर्य है 'साध्याऽभाववदवृत्तित्वम्' अर्थात् जहाँ साध्य नहीं रहता है वहाँ रहना। 'साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिः' यह व्याप्तिका लक्षण पर्यवसन्न हुआ। अब इस बातको स्पष्ट करते हैं—'महानसं वह्निमत्, धूमात्' अर्थात् 'महानस (पाकशाला) वह्नियुक्त है, धूमके रहने से' इत्यादिमें साध्य हुआ वह्नि, उसका अभाववाला हुआ जलह्रद (तालाब) आदि, उसमें नौका आदिकी वृत्ति (स्थिति) है, प्रकृत हेतुभूत धूममें आवृत्ति (अस्थिति) है, इस प्रकार लक्षणसमन्वय हुआ। 'धूमवान् वह्नेः' अर्थात् (पर्वत) धूमवाला है, वह्नि होनेसे इत्यादि असद् हेतुमें साध्य हुआ धर्म, उसका अभाववाला हुआ अयोगोलक (तपा हुआ लोहपिण्ड)। वह्नि आदिकी उसमें वृत्ति (स्थिति) है, इसलिए यहाँपर अतिव्याप्ति नहीं हुई।

पक्षधर्मताया लक्षणम्—

व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता।

अनुवाद—पक्षधर्मताका लक्षण करते हैं–व्याप्य अर्थात् साध्य वह्नि आदि-की व्याप्तिसे युक्त धूम आदिके पक्ष–पर्वत आदिमें रहनेको 'पक्षधर्मता' कहते हैं।

ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः। पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र का पक्षधर्मता ? इत्यपेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति। व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः। स च धूमादिरेव, तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मतेत्यर्थः।

अनुवाद—प्रश्न करते हैं—व्याप्ति तो जानी गई, 'पक्षधर्मताज्ञानम्' इस पदमें स्थित 'पक्षधर्मता' का क्या लक्षण है ? ऐसी अपेक्षा करनेवालेके प्रति पक्षधर्मताका स्वरूप दिखलाते हैं—व्याप्यस्येति। व्याप्तिके आश्रयको 'व्याप्य' कहते हैं। वह हुआ हेतुभूत धूम, पर्वत आदि पक्षमें उसकी स्थितिको 'पक्ष-धर्मता' कहते हैं।

टिप्पणी—थोड़े देशमें रहनेवाले धूम आदि हेतुको 'व्याप्य' और अधिक देशमें रहनेवाले वह्नि आदि साध्यको 'व्यापक' कहते हैं।

अनुमानद्वैविध्यम्—

अनुमानं द्विविधं—स्वार्थं परार्थं च ।

अनुवाद—अनुमान के दो भेद हैं—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान ।

अथ कथमनुमानमनुमितिकरणं कथं वा तस्मादनुमितेर्जनिः? इति जिज्ञासमानं प्रति लाघवादनुमानविभागमुखेनैव बुबोधयिषुरनुमानं विभजते । अनुमानं द्विविधमिति । तद्द्वैविध्यं दर्शयति—स्वार्थमिति ।

अनुवाद—अनुमानमिति । अब अनुमान कैसे अनुमितिका करण है ? और कैसे उससे अनुमितिकी उत्पत्ति होती है ? ऐसा जाननेकी इच्छा करनेवालेके प्रति लाघवसे अनुमानके विभागके द्वारसे समझानेकी इच्छा करते हुए अनुमान-का विभाग करते हैं—अनुमानं द्विविधमिति । अनुमानके दो भेद हैं । अनुमान-के दो भेदोंको दिखलाते हैं—स्वार्थमिति । स्वार्थानुमान और परार्थानुमान ।

किं नाम स्वार्थाऽनुमानम्—

तत्र स्वार्थं स्वाऽनुमितिहेतुः । तथाहि स्वयमेव भूयोदर्शनेन 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्नि'रिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाऽग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राऽग्नि'रिति । तदनन्तरं 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत' इति ज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्पर्वतो वह्निमान् इति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् ।

अनुवाद—उन दो अनुमानोंके बीचमें अपनी अनुमितिके हेतुको 'स्वार्था-नुमान' कहते हैं । जैसे—स्वयम् ही बारंबार धूम और अग्निका साहचर्य देखनेसे 'जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है' इस प्रकार महानस (पाक-शाला) आदिमें व्याप्तिको जानकर पर्वतके समीप गया । वहाँपर स्थित अग्नि-में शङ्का करता हुआ, पर्वतमें धूआँ देखकर व्याप्तिका स्मरण करता है—जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है ।' उसके बाद 'अग्निकी व्याप्तिका आश्रय धूम-वाला यह पर्वत है' ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है । इसीको 'लिङ्गपरामर्श' कहते हैं । उस परामर्शसे 'पर्वतो वह्निमान्' अर्थात् पर्वत वह्निवाला है, ऐसा अनु-मितिज्ञान उत्पन्न होता है । यह स्वार्थानुमान है ।

टिप्पणी—हेतु धूम आदिको 'लिङ्ग' और वह्निसाध्यको 'लिङ्गी' भी कहते हैं ।

स्वाऽर्थमिति । स्वस्य अर्थः प्रयोजनं यस्मात्तत् स्वाऽर्थमिति समासः । स्वप्रयोजनं च स्वस्याऽनुमेयप्रतिपत्तिः । एव पराऽर्थमित्यस्याऽपि—अयमिति । व्याप्तिबलेन लीनमर्थं गमयति लिङ्गम्, तच्च धूमादिः तस्य परामर्शः=ज्ञान-विशेषः । तस्मादिति । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः । स्वाऽर्थानुमानमुपसंहरति—तदेतदिति । यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुः, तस्मादेतत्स्वाऽर्थाऽनुमानम् ।

अनुवाद—स्वाऽर्थमिति । 'स्वस्य अर्थः (प्रयोजनम्) यस्मात् तत् स्वार्थम्' यह (बहुव्रीहि) समास है । अपना प्रयोजन जिससे हो, वह स्वार्थ अनुमान है । स्वप्रयोजनका अर्थ है—अपने लिए अनुमेय(वह्नि आदि)का ज्ञान । इसी तरह 'परार्थम्' इसको भी जानना चाहिए । अर्थात् 'परस्य अर्थः (प्रयोजनम्) यस्मात् तत् परार्थम् ।' यह (बहुव्रीहि) समास है । परप्रयोजनम्=इसका अर्थ हुआ दूसरेको अनुमेय(वह्नि आदि)का ज्ञान । स्वाऽर्थाऽनुमानके अनन्तर दूसरेको अनुमेय(वह्नि आदि)के ज्ञानके लिए जो अनुमान किया जाता है, उसे 'पराऽर्थाऽनुमान' कहते हैं । अयमिति । व्याप्तिके बलसे लीन (गुप्त) अर्थ-(पदार्थ, वह्नि आदि)का जो ज्ञान कराता है, उसे 'लिङ्ग' कहते हैं, वह धूम आदि है । उस(लिङ्ग)का परामर्श=ज्ञानविशेष । तस्मादिति । तस्मात्=लिङ्गपरामर्शसे । स्वाऽर्थाऽनुमानका उपसंहार करते हैं—तदेतदिति । जिस कारणसे यह अपने ज्ञानका हेतु है, उस कारणसे यह स्वाऽर्थाऽनुमान है ।

पराऽर्थाऽनुमानस्य स्वरूपम्—

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चाऽवयववाक्यं प्रयुज्यते तत् पराऽर्थानुमानम् । यथा—पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्त्वात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान् । यथा—महानसम् तथा चाऽयम् तस्मात्तथा इति । अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ।

अनुवाद—जो स्वयम् धूमसे अग्निका अनुमान करके दूसरेको समझानेके लिए पाँच अवयवोंवाले वाक्यका प्रयोग किया जाता है, वह 'पराऽर्थानुमान' है । जैसे—पर्वत वह्निवाला है, धूम होनेसे, जो-जो धूमवाला है, वह वह्निवाला है, जैसे—महानस (पाकशाला) है, वैसे ही यह (पर्वत) (धूमवाला) है, इस कारणसे वैसा (यह पर्वत वह्निवाला) है । इन पाँच अवयवोंसे युक्त वाक्यसे प्रतिपादित लिङ्ग(हेतु—धूम)से पर (अन्य) भी अग्निको जानता है ।

क्रमप्राप्तं पराऽर्थाऽनुमानमाह–यत्तु इति । यत् पञ्चाऽवयववाक्यं प्रयुज्यते तत् पराऽर्थाऽनुमानम् इति सम्बन्धः । पञ्चाऽवयवेति । अत्राऽवयवत्वं नाम द्रव्य-

समवायिकारणत्वं प्रतिज्ञादिषु तदसम्भवात् कथमेते अवयवाः स्युः इति चेदनुमानवाक्यैकदेशात्तु अवयवा इत्युपचर्यंते इति गृहाण। ननु एवमपि पञ्चाऽवयववाक्यस्य अनुमानत्वमेव न विचारसहं, तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाऽभावात् इति चेत्? मैवं, लिङ्गपरामर्शप्रयोजकलिङ्गप्रतिपादकत्वेन अनुमानम् इत्युपचारमात्रत्वात्। तदुदाहरति—यथेति। तथा चाऽयमिति। अयं च पर्वतः तथा वह्निव्याप्यधूमवानित्यर्थः। अनेनेति। अनेन पञ्चाऽवयववाक्येन इत्यर्थः।

अनुवाद—क्रमसे प्राप्त पराऽर्थानुमानको कहते हैं—यत्तु इति। जो पञ्चाऽवयव वाक्यका प्रयोग किया जाता है, वह पराऽर्थाऽनुमान है, ऐसा सम्बन्ध करना। पञ्चावयवेति। द्रव्यके समवायिकारणको 'अवयव' कहते हैं, परन्तु प्रतिज्ञा आदियोंमें अवयवका सम्भव न होनेसे ये कैसे अवयव होंगे? ऐसी शङ्का होनेपर समाधान है, अनुमानवाक्यका एकदेश (एक भाग) होनेसे उपचार(लक्षणा)से इन्हें अवयव कहा गया है। फिर शङ्का करते हैं—इस प्रकार भी पञ्चाऽवयव वाक्यको अनुमान कहना विचारपूर्ण नहीं है, क्योंकि उसका लिङ्गपरामर्श नहीं है। इसका समाधान करते हैं। लिङ्गपरामर्शके प्रयोजक लिङ्गका प्रतिपादक होनेसे अनुमान है, इस प्रकार उपचार(लक्षणा)-से यह कहा गया है। उदाहरण देते हैं—यथेति। यथा चाऽयमिति। यह पर्वत भी उसी तरह वह्निकी व्याप्तिसे विशिष्ट धूमवाला है। तस्मात्तथेति। वह्निकी व्याप्तिसे युक्त धूमवाला होनेसे (यह पर्वत) वह्निवाला है। अनेनेति। इस पञ्चाऽवयव वाक्यसे प्रतिपादित लिङ्ग(धूम आदि हेतु)से दूसरा भी पर्वत में वह्निको जानता है।

के नाम पञ्चाऽवयवाः—

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनय-निगमनानि पञ्चाऽवयवाः। १. पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा। २. धूमवत्त्वादिति हेतुः। ३. यो यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम्। ४. तथा चाऽयमित्युपनयः ५. तस्मात्तथेति निगमनम्।

अनुवाद—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन–ये पाँच अवयव हैं। १. पर्वत अग्निवाला है, यह प्रतिज्ञा है। २. धूमवाला होनेसे, यह हेतु है। ३. जो-जो धूमवाला है वह-वह अग्निवाला है, जैसे—महानस; यह उदाहरण है। ४. वैसे ही यह (पर्वत) (धूमवाला) है, यह उपनय है। ५. इस कारण से वैसा (यह पर्वत वह्निवाला) है, यह निगमन है।

ननु पञ्चाऽवयववाक्यमित्यत्र के ते पञ्चाऽवयवाः? अतस्तान्दर्शयति—प्रतिज्ञेति। प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम् अवयवत्वम्। साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं

प्रतिज्ञा। पञ्चम्यन्तं तृतीयाऽन्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः। व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनम् उदाहरणम्। उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकवचनम् उपनयः। पक्षे साध्यस्य अबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम्। इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन् विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वह्निमानिति।

अनुवाद—पञ्चाऽवयव वाक्यको जो परार्थानुमान बतलाया है, वे पाँच अवयव कौन हैं ? इस प्रश्न का समाधान करनेके लिए उनको दिखलाते हैं—प्रतिज्ञेति। न्यायके अवयवका लक्षण करते हैं—'प्रतिज्ञाऽऽद्यन्यतमत्वम् अवयवत्वम्'। अर्थात् प्रतिज्ञा आदिमें किसी एकको 'अवयव' कहते हैं। प्रतिज्ञाका लक्षण करते है—वह्नि आदि साध्यसे युक्त पर्वत आदि पक्षका बोध करनेवाले वचनको 'प्रतिज्ञा' कहते हैं। हेतुका लक्षण देते हैं—पञ्चम्यन्त वा तृतीयाऽन्त लिङ्ग(हेतु)के परिभाषणको 'हेतु' कहते हैं। उदाहरणका लक्षण देते हैं—व्याप्तिका प्रतिपादन करनेवाले दृष्टान्तके परिभाषणको 'उदाहरण' कहते हैं। उपनयका लक्षण देते हैं—उदाहृत व्याप्तिकी विशेषतासे हेतु धूमका पक्ष-(पर्वत)में रहनेका प्रतिपादन करनेवाले वचनको 'उपनय' कहते हैं। निगमनका लक्षण देते हैं—पर्वत आदि पक्षमें वह्नि आदि साध्य बाधित नहीं है, इस बातका प्रतिपादन करनेवाले वचनको 'निगमन' कहते है, इसी लक्षण-(समूह)को हृदयमें रखकर प्रतिज्ञा आदियोंको एक एक कर दिखलाते हैं—'पर्वतो वह्निमान्' इत्यादि।

स्वाऽर्थानुमितिपराऽर्थाऽनुमित्योः किं कारणम्—

स्वार्थाऽनुमितिपराऽर्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम्। तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्।

अनुवाद—स्वाऽर्थानुमिति और पराऽर्थाऽनुमिति दोनोंका लिङ्गपरामर्श ही करण है। इस कारणसे लिङ्गपरामर्श अनुमान है।

स्वाऽर्थेति। ज्ञायमानं लिङ्गम् अनुमितिकरणमिति वृद्धोक्तं न युक्तम्। 'इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीतधूमात्' इत्यादौ लिङ्गाऽभावेऽपि अनुमितिदर्शनात् इत्यभिप्रायवान् लिङ्गपरामर्श एव करणम् इति व्याचष्टे—लिङ्गपरामर्शेति। अनुमानमुपसंहरति— तस्मादिति। अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः। अयमेव तृतीयज्ञानमित्युच्यते। तथा हि महानसादौ धूमाऽग्न्योर्व्याप्तौ गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तत् आदिमम्। पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्द्वितीयम्। अत्रैव वह्निव्याप्यत्वेन यद् ज्ञानं तत्तृतीयम्। इदमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते। अनुमानमिति। व्यापारवत् कारणं करणम् इति मते व्याप्तिज्ञानमेवाऽनुमानं, लिङ्गपरामर्शो व्यापार इत्यवसेयम्।

अनुवाद—स्वार्थेति । प्राचीन नैयायिक ज्ञायमान लिङ्ग(हेतु)को अनुमितिका करण मानते हैं, वह ठीक है, क्योंकि 'ज्ञायमान' कहनेसे ज्ञा धातु से वर्तमान कालमें लट्के स्थानमें शानच् हुआ है, इससे वर्तमानका लिङ्गमात्र अनुमितिका करण होना चाहिए था, परन्तु 'इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीत-धूमात्' अर्थात् यह यज्ञशाला आगवाली है, अतीतकालके धूम होनेसे इत्यादिमें वर्तमानकालके लिङ्ग(हेतु)के न होनेपर भी 'यज्ञशाला वह्निमती (आगवाली) है' ऐसी अनुमितिको देखनेसे ऐसे अभिप्रायवाले ग्रन्थकार लिङ्गपरामर्श ही करण है, ऐसी व्याख्या करते हैं—लिङ्गपरामर्शेति । अनुमानका उपसंहार करते हैं—तस्मादिति । अनुमितिका करण होनेसे लिङ्गपरामर्श अनुमान है । इसीको तृतीय ज्ञान कहते हैं । जैसे—महानस आदिमें धूम और अग्निकी व्याप्तिको ग्रहण करनेपर जो धूमज्ञान है, वह प्रथम ज्ञान है । पक्ष(पर्वत आदि)में जो धूमज्ञान है, वह द्वितीय है । पक्ष(पर्वत आदि)में ही वह्निकी व्याप्तिके आश्रयत्वेन जो धूमज्ञान है, वह तृतीय ज्ञान है । इसीको 'लिङ्गपरामर्श' कहते हैं । अनुमानमिति । 'व्यापारवत् कारणं करणम्' अर्थात् व्यापारविशिष्ट कारणको 'करण' कहते हैं, इस मतमें व्याप्तिज्ञान ही अनुमान है । लिङ्गपरामर्श व्यापार है, यह जानना चाहिए ।

लिङ्गं त्रिविधम्—

लिङ्गं त्रिविधम्—अन्वयव्यतिरेकि, केवलाऽन्वयि, केवलव्यतिरेकि चेति ।

अनुवाद—लिङ्ग तीन प्रकारका होता है—अन्वयव्यतिरेकि, केवलाऽन्वयि और केवलव्यतिरेकि ।

अन्वयव्यतिरेकिलक्षणम्—

अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि, यथा—वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । 'यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा—महानसम्' इत्यन्वय-व्याप्तिः । 'यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नाऽस्ति, यथा—ह्रद' इति व्यतिरेकव्याप्तिः ।

अनुवाद—अन्वय और व्यतिरेकसे जहाँ व्याप्ति रहती है, उस लिङ्ग(हेतु)-को 'अन्वयव्यतिरेकि' कहते हैं । जैसे—साध्य वह्निमें साधन धूमका रहना । 'जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है, जैसे—महानस (पाकशाला), यह अन्वयव्याप्ति है । जहाँ वह्नि नहीं है, वहाँ धूम भी नहीं है, जैसे—ह्रद, यहाँ व्यतिरेक व्याप्ति है । 'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः' अर्थात् उस(धूम)के सत्त्व(स्थिति)में उस

(अग्नि)का सत्त्व (स्थिति), यह अन्वय है। 'तदभावे तदभावो व्यतिरेकः' अर्थात् उस(वह्नि)के अभावमें उस(धूम)का अभाव व्यतिरेक है। इस प्रकार यहाँ अन्वय और व्यतिरेक दोनों व्याप्तियोंके होनेसे हेतु धूमको अन्वय-व्यतिरेकी कहते हैं।

अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—अन्वयेनेति। तृतीयायाः प्रयोज्यत्वमित्यर्थः। साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः, तदभावयोः साहचर्यं व्यतिरेकः। तथा चाऽन्वयप्रयोज्यव्याप्तिमद् व्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमद् अन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः। केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेनेति। केवलाऽन्वयिनि व्यभिचारवारणाय व्यतिरेकेणेति। तथा च अन्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव। व्यतिरेकव्याप्तिश्च साध्याऽभावव्यापकीभूताऽभावप्रतियोगित्वम् इत्यर्थः। तदुक्तं—

> **व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते।**
> **तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते॥**
> **अन्वयः साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते।**
> **साध्याऽभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनाऽत्ययः॥**

अनुवाद—अन्वयव्यतिरेकि(लिङ्ग)का लक्षण करते हैं—अन्वयेनेति। वह्नि व्यापक होता है, इसमें तृतीया विभक्तिका प्रयोज्यत्व अर्थ है। साध्य (वह्नि आदि) और साधन(धूम आदि)के साहचर्य(सहभाव)को 'अन्वय' कहते हैं, साध्य(वह्नि आदि)के अभावसे और साधन(धूम आदि)के अभावके साहचर्यको 'व्यतिरेक' कहते हैं। इस प्रकार अन्वयप्रयोज्य व्याप्तिसे युक्त लिङ्गको 'अन्वयि' कहते हैं, व्यतिरेकप्रयोज्य व्याप्तिसे युक्त लिङ्गको 'व्यतिरेकि' कहते हैं। अन्वय और व्यतिरेक दोनों व्याप्तियोंसे युक्त लिङ्गको 'अन्वयव्यतिरेकि' कहते हैं। यह तात्पर्य है। केवलव्यतिरेकिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अन्वयेन' कहा है। केवलाऽन्वयिमें व्यभिचार हटानेके लिए 'व्यतिरेकेण' कहा है। इस प्रकार अन्वयव्याप्तिको दिखलाया ही है। साध्याऽभावका व्यापकीभूत जो अभाव, उसके प्रतियोगी हेतु होनेसे व्यतिरेकव्याप्ति होती है। जैसे—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' अर्थात् पर्वत वह्निवाला है, धूम होनेसे, यहाँपर साध्य हुआ वह्नि उसका अभाव वह्न्यभाव, उसका व्यापकीभूत अभाव हुआ धूमाऽभाव, उसका प्रतियोगी हुआ धूम। अतः धूम लिङ्गमें व्यतिरेकव्याप्तिका लक्षण घटित हुआ। जैसे कहा गया है धूम और वह्नि अर्थात् साधन और साध्य इन दोनों की भावव्याप्तिमें जैसा व्याप्य व्यापक भाव होता है अर्थात् साधन धूम व्याप्य और,

साध्य वह्नि व्यापक होता है। उनकी (धूम और वह्निकी) अभावव्याप्तिमें व्याप्यव्यापकभाव विपरीत होता है। अर्थात् साध्याऽभाव व्याप्य और साधनाऽभाव व्यापक होता है। अन्वयव्याप्तिमें साधन (धूम) व्याप्य और साध्य (वह्नि) व्यापक होता है। व्यतिरेकव्याप्तिमें साध्याऽभाव (वह्न्यभाव) व्याप्य और साधनाऽभाव (धूमाऽभाव) व्यापक होता है। जैसे—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इस अन्वयव्याप्तिमें वह्नि पर्वत, महानस और आयोगोलक(तप्त लोहेके पिण्ड)में रहता है, धूम पर्वत और महानसमें रहता है, परन्तु अयोगोलकमें नहीं रहता। इससे प्रतीत होता है कि अधिकदेशमें रहनेसे वह्नि (साध्य) व्यापक है, परन्तु अल्पदेशमें रहनेसे धूम (साधन) व्याप्त है किन्तु व्यतिरेकव्याप्तिमें 'यत्र वह्न्यभावस्तत्र धूमाऽभावः' यहाँपर वह्न्यभावका अधिकरण ह्रदमात्र है, आयोगोलक नहीं। इसलिए साध्यभाव व्याप्य है। धूमाऽभावका अधिकरण ह्रदके साथ आयोगोलक भी है, इसलिए व्यतिरेकव्याप्तिमें साधनभाव व्यापक है।

केवलाऽन्वयिलक्षणम्—

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलाऽन्वयि। यथा—घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्। अत्र प्रमेयत्वाऽभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति, सर्वस्याऽपि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च।

अनुवाद—जहाँपर केवल अन्वयव्याप्ति रहती है, उस लिङ्ग(हेतु)को 'केवलाऽन्वयि' कहते हैं। जैसे—'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्' अर्थात् घट अभिधेय (वाच्य) है, प्रमेय (प्रमा—यथार्थ ज्ञानका विषय) होनेसे 'यत्र यत्र प्रमेयत्वं तत्र तत्र अभिधेयत्वम्'। यहाँ प्रमेयत्व (हेतुत्व) और अभिधेयत्व(साध्यत्व)की केवल अन्वयव्याप्ति है, व्यतिरेकव्याप्ति नहीं है अर्थात् 'यत्र अभिधेयत्वं नाऽस्ति तत्र प्रमेयत्वं नाऽस्ति' ऐसी व्यतिरेकव्याप्ति नहीं है, क्योंकि सकल पदार्थ प्रमेय और अभिधेय हैं।

केवलाऽन्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति। अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्य स तथा। प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—अत्रेति। अभिधेयत्वसाधकाऽनुमान इत्यर्थः। कुतस्तन्निषेधोऽस्तत्र हेतुमाह—सर्वस्येति। पदार्थमात्रस्येत्यर्थः। तथा च सकलस्याऽभिधेयत्वेन प्रमेयत्वेन च अत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वात् तदभावाऽप्रसिद्ध्या तद्घटितव्यतिरेकव्याप्तिर्न सम्भवतीति भावः।

अनुवाद—केवलाऽन्वयिका लक्षण कहते हैं–अन्वयेति । अन्वयसे ही व्याप्ति जिसमें हो, वह लिङ्ग (हेतु) केवलान्वयि है । प्रमेयत्व और अभिधेयत्वकी व्यतिरेकव्याप्तिका निराकरण करते हैं—अत्रेति । अभिधेयत्वके साधक अनुमानमें व्यतिरेकव्याप्ति नहीं है । कैसे व्यतिरेकव्याप्तिका निषेध है ? उसमें हेतु कहते हैं- सर्वस्येति । पदार्थमात्रके अभिधेय और प्रमेय होनेसे व्यतिरेकव्याप्ति नहीं है। सकल पदका अभिधेयत्व (वाच्यत्व) और ईश्वरप्रमाविषयत्वका अत्यन्ताऽभावका अप्रतियोगित्वरूप केवलाऽन्वयि होनेसे उसके अभावकी प्रसिद्धि नहीं है । इसलिए अभावघटित व्यतिरेकव्याप्तिका संभव नहीं है, यह तात्पर्य है । 'अत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वं केवलाऽन्वयित्वम्' अर्थात् केवलाऽन्वयिका लक्षण है जो अत्यन्ताऽभावका प्रतियोगी नहीं है, उसे 'केवलाऽन्वयि' कहते हैं । अभिधेयत्व और ईश्वरप्रमेयत्वके अत्यन्ताभावका प्रतियोगी न होनेसे व्यतिरेकव्याप्ति नहीं होती ।

केवलव्यतिरेकिलक्षणम्—

व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा—'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धत्त्वात्, यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद् गन्धवत्, यथा—जलं, न चेयं तथा, तस्मान्न तथेति ।' अत्र यद् गन्धवत् तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नाऽस्ति, पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ।

अनुवाद—केवल व्यतिरेकव्याप्तिवाले लिङ्ग(हेतु)को 'केवलव्यतिरेकि' कहते हैं । जैसे—पृथिवी इतरसे भिन्न है, गन्धवती होनेसे, जो इतरसे भिन्न नहीं है, वह गन्धवाला नहीं है, जैसे—जल है । यह पृथ्वी जलके समान (गन्धरहित) नहीं है । इसलिए पृथ्वी वैसी (इतर पदार्थ के समान) गन्धहीन नहीं, गन्धवाली है । यहांपर जो गन्धवाली है, वह इतरभिन्न है, ऐसा अन्वयदृष्टान्त नहीं है । पृथिवीमात्र पक्ष है ।

केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति । व्यतिरेकेणैव व्याप्तिर्यस्मिंस्तत्तथा । अन्वयव्यतिरेकिणि अतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति । न चेयं तथेति । इयं= पृथिवी, न तथा=न गन्धाऽभाववती इत्यर्थः । तस्मात् न तथेति । गन्धाऽभाववत्त्वाऽभावाद् इतरभेदाऽभाववती नेत्यर्थः । ननु अत्र किमिति न अन्वयव्याप्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—अत्रेति । इतरभेदसाधकाऽनुमान इत्यर्थः । इदमुपलक्षणं जीवच्छरीरं सात्मकं; प्राणादिमत्त्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा घटः प्रत्यक्षादिकं प्रमाणमिति व्यवहर्तव्यं प्रमाकरणत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा प्रत्यक्षाभासः ।

विवादास्पदम् आकाश इति व्यवहर्तव्यं, शब्दवत्त्वात् इत्यादिकमपि केवल-व्यतिरेकीति द्रष्टव्यम् ।

अनुवाद—केवलव्यतिरेकिका लक्षण कहते हैं—व्यतिरेकेति । केवलव्यति-रेकिसे जहाँ व्याप्ति रहती है, उसे 'केवलव्यतिरेकि' कहते हैं। अन्वयव्यतिरेकिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'मात्र' पद दिया है। न चेयं तथेति । यह=पृथिवी गन्धका अभाववाली नहीं है । तस्मान्न तथेति । गन्धका अभाववाली नहीं, इस कारण इतरभेदके अभाववाली नहीं है ।

यहाँ अन्वयव्याप्ति क्यों नहीं है ? ऐसी आशङ्काका परिहार करते हैं—अत्रेति। इतरभेदके साधक अनुमानमें यह तात्पर्य है। यह उपलक्षण है। 'जीवित शरीर आत्मावाला है, प्राण आदिसे युक्त होनेसे, जो ऐसा (प्राण आदियुक्त) नहीं है, वह आत्मावाला नहीं है, जैसे—घट ।'

'प्रत्यक्ष आदि प्रमाण है' कहकर व्यवहार करना चाहिए । प्रमाके करण होनेसे, जो प्रमाका करण नहीं है, वह प्रमाण नहीं है, जैसे—प्रत्यक्षका आभास ।

इसी तरह 'विवादका स्थान आकाश है' कहकर व्यवहार करना चाहिए । 'शब्दवाला होनेसे' इत्यादि स्थल भी अन्वयव्याप्तिके न होनेसे केवलव्यतिरेकि (लिङ्ग) है, यह जानना चाहिए ।

पक्षलक्षणम्—

सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः । यथा—धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः ।

अनुवाद—पक्षका लक्षण है—'सन्दिग्धसाध्यवत्त्वं पक्षत्वम्' अर्थात् जहाँपर साध्य(वह्नि आदि)का सन्देह हो, उसे 'पक्ष' कहते हैं। जैसे—धूमवत्त्व हेतुमें पर्वत पक्ष है ।

अत्र पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् इत्यत्र का नाम पक्षता ? इत्यपेक्षायामाह—सन्दिग्धेति । सपक्षवारणाय सन्दिग्धेति ।

अनुवाद—केवल व्यतिरेकिके निरूपण-प्रसङ्गमें 'पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात्' जो कहा गया है, उसमें पक्ष किसे कहते हैं ? ऐसी अपेक्षा होनेपर उसका लक्षण देते हैं—सन्दिग्धेति ।

'साध्यवान् पक्षः' अर्थात् साध्यवालेको पक्ष कहते हैं, ऐसा कहनेपर सपक्ष (महानस) आदिमें अतिव्याप्ति होगी, उसे दूर करनेके लिए 'सन्दिग्ध' पद दिया गया है ।

सपक्षलक्षणम्—

निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । यथा—तत्रैव महानसम् ।

अनुवाद—जहाँपर साध्य(वह्नि आदि)का निश्चय हो, उसे 'सपक्ष' कहते हैं । जैसे—वहींपर (धूमवत्त्व हेतुमें) महानस (पाकशाला) सपक्ष है ।

निश्चितेति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय—निश्चितेति । तत्रवेति । धूमवत्त्वे हेतावेवेत्यर्थः ।

अनुवाद—पक्षमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'निश्चित' पद दिया है । तत्रैवेति । धूमवत्त्व हेतुमें ही जैसे—महानस (पाकशाला) है ।

विपक्षस्य लक्षणम्—

निश्चितसाध्याऽभाववान् विपक्षः । यथा—तत्रैव महाह्रदः ।

अनुवाद—जहाँपर साध्यके अभावका निश्चय हो, उसे 'विपक्ष' कहते हैं । जैसे—वहीं पर (धूमवत्त्व हेतुमें) महाह्लद है । महाह्लदमें साध्य(वह्नि)का अभाव निश्चित है ।

निश्चितसाध्याऽभावेति । सपक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्येति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रैव = धूमवत्त्व एव ।

अनुवाद—साध्य न लिखकर केवल 'निश्चिताऽभाववान्' लिखें तो जहाँपर घटादिका अभाव निश्चित है, वैसे महानस आदिमें अतिव्याप्ति होगी । अतः उसे हटानेके लिए 'साध्य' पद दिया है । यहाँ पर साध्य हुआ वह्नि, उसका अभाव हुआ वह्न्यभाव, जहाँ पर वह्निका अभाव निश्चित है, वह हुआ प्रकृतमें महाह्लद, उसे 'विपक्ष' कहते हैं ।

अब 'निश्चित' पद न देकर 'साध्याऽभाववान्' इतना ही लिखें तो कहींपर साध्य(वह्नि)का अभाववाला पक्ष (पर्वत आदि) भी हो सकता है, उसे हटानेके लिए 'निश्चित' पद दिया है । जहाँपर साध्याऽभाव(वह्न्यभाव)का निश्चय है वह हुआ महाह्लद, वह विपक्ष है, अत्रैव = वहींपर अर्थात् धूमवत्त्व हेतु में ही ।

हेत्वाभासाः के ? कतिविधाश्च ते ?—

सव्यभिचार-विरुद्ध-सत्प्रतिपक्षाऽसिद्ध-बाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः ।

अनुवाद हेतु(लिङ्ग)का निरूपण करके हेत्वाभास(असिद्धहेतु)का निरूपण करते हैं । सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित—ये पाँच हेत्वाभास हैं ।

टिप्पणी—हेत्वाभासका सामान्य लक्षण है—'अनुमितितत्करणाऽन्यतर-प्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वं हेत्वाभासत्वम्'। अर्थात् अनुमिति और उसका करण, इनमें एकके प्रतिबन्धक ज्ञानविषयको 'हेत्वाभास' कहते हैं।

हेतुं निरूप्य प्रसङ्गाद्धेत्वाभासानाह—सव्यभिचारेति। अत्रेदं बोध्यम्। अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते। तानि कानीति चेत् श्रूयताम्—पक्षधर्मत्वं, सपक्षसत्त्वं, विपक्षाद्व्यावृत्तिः, अबाधितविषयत्वम्, असत्प्रतिपक्षत्वं चेति। अबाधितः साध्यरूपो विषयो यस्य तत् तथोक्तं तस्य भावः तत्त्वम्। एवं साध्याऽभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इत्युच्यते। स नास्ति यस्य सः असत्प्रतिपक्षः। तस्य भावस्तत्त्वम्। केवलाऽन्वयि तु चतु-रूपोपपन्नमेव स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते, तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्व्यावृत्तिविप-र्ययात्। केवलव्यतिरेक्यपि तथा, तस्य सपक्षविपर्ययेण तत्सत्त्वविपर्ययात्। उप-दर्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वाद्धेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः। तत्त्वं च अनुमितितत्करणाऽन्यतर-प्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम्। बाधस्थले वह्निरनुष्ण इति अनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानम् उष्णत्ववद्वह्नौ अनुष्णत्वसाधक-द्रव्यत्वम् इत्याकारकं तद्विषयत्वस्य विषयतासम्बन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। सद्धेतुवारणाय—यथार्थेति। घटादिवारणाय-अनुमिति-तत्करणेति। व्यभिचारिणि अव्याप्तिवारणाय तत्करणाऽन्यतरेति।

अनुवाद—हेतुका निरूपण करके प्रसङ्गसे हेत्वाभासोंको कहते हैं—सव्य-भिचारेति। यहाँ यह जानना चाहिए कि अन्वयव्यतिरेकि हेतु तो पाँच रूपोंसे युक्त होकर ही अपने साध्यको सिद्ध करनेके लिए समर्थ होता है। वे कौन हैं? ऐसा प्रश्न करते हैं तो उसका उत्तर सुन लें—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षसे व्यावृत्ति, अबाधितविषयत्व और असत्प्रतिपक्षत्व। जिसका साध्यरूप विषय अबाधित (बाधित नहीं) है, उसे 'अबाधितविषय' कहते हैं, उसके भाव(धर्म)-को 'अबाधितविषयत्व' कहते हैं। इसी तरह जिसके साध्यके अभावका साधक दूसरा हेतु है, उसे 'सत्प्रतिपक्ष' कहते हैं। जिसका सत्प्रतिपक्ष नहीं है, उसे 'असत्प्रतिपक्ष' कहते हैं, उसके भाव(धर्म)को असत्प्रतिपक्षत्व कहते हैं। केवलाऽन्वयि तो पूर्वोक्त पाँच रूपोंमें चार रूपोंसे युक्त होकर ही अपने साध्यको सिद्ध करनेमें समर्थ होता है, उसका विपक्ष नहीं होता, इसलिए उस(विपक्ष) की व्यावृत्ति भी नहीं होती।

इसी तरह केवल व्यतिरेकि भी चार रूपोंसे ही युक्त होकर अपने साध्यको

सिद्ध करनेमें समर्थ होता है, उसका सपक्ष नहीं होता, इसलिए उस(सपक्ष)-की सत्ता नहीं होती। पूर्व-प्रदर्शित रूपोंके बीचमें कतिपय रूपोंसे युक्त होनेसे हेतुके समान आभास (प्रतीत) होनेसे उन्हें 'हेत्वाभास' कहते हैं। हेत्वाभासका लक्षण करते हैं—अनुमिति वा अनुमितिकरणमें से एकका प्रतिबन्धक यथार्थज्ञानके विषयको 'हेत्वाभास' कहते हैं।

बाध(हेत्वाभास)के 'वह्निरनुष्णः द्रव्यत्वात्' इस स्थलमें वह्निमें अनुष्णत्व साध्य है, इस अनुमितिका प्रतिबन्धक ज्ञान है 'उष्णत्ववत्' वह्निमें अनुष्णत्वका साधक हेतु है द्रव्यत्व, उसका विषयतासम्बन्धसे द्रव्यस्वरूप हेत्वाभासमें स्थिति होनेसे लक्षणसमन्वय होता है। सद्धेतुमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए हेत्वाभासके लक्षणमें 'यथार्थ' पद दे दिया है। प्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्व घट आदिमें भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अनुमितितत्करणाऽन्यतर' पद दिया है। व्यभिचारीमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तत्करणाऽन्यतर' ऐसा पद दिया गया है। यद्यपि 'अनुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम्' इतना ही हेत्वाभासका लक्षण होनेपर इसीमें अनुमितिकरणप्रतिबन्धकत्व भी अन्तर्भूत हो सकता है, तथापि शिष्यबुद्धिवैशद्यके लिए दोनोंको अलग-अलग करके दिखलाया है।

सव्यभिचारस्य लक्षणं भेदाश्च—

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः। स त्रिविधः—साधारणाऽसाधारणाऽनुपसंहारिभेदात्।

अनुवाद—सव्यभिचारको अनैकान्तिक भी कहते हैं। सव्यभिचारका लक्षण है—'साधारणाऽसाधारणाऽनुपसंहार्यन्यतमत्वं सव्यभिचारत्वम्'। अर्थात् साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी इस प्रकार सव्यभिचार के तीन भेद होते हैं।

साधारणस्य लक्षणमुदाहरणं च—

तत्र साध्याऽभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः। यथा—पर्वतो वह्निमान्प्रमेयत्वादिति। अत्र प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात्।

अनुवाद—साधारणका लक्षण करते हैं—'साध्याऽभाववद्वृत्तित्वं साधारणाऽनैकान्तिकत्वम्'। अर्थात् जो हेतु साध्यके अभाववाले पदार्थमें रहता है, उसे 'साधारण अनैकान्तिक' कहते हैं। उदाहरण देते हैं—'पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्' अर्थात् पर्वत वह्निवाला है, प्रमेय होनेसे। यहांपर प्रमेयत्व (प्रमाविषयत्व) हेतु साध्य=वह्निके अभाववाला पदार्थ ह्रदमें रहता है, इसलिए यहां प्रमेयत्व हेतु व्यभिचारी होनेसे साधारण हेत्वाभास हो गया।

तत्रेति । साधारणादित्रितयमध्य इत्यर्थः । अथ विरुद्धेऽतिप्रसक्तिरिति मा स्म दृप्याः, सपक्षवृत्तित्वस्याऽपि निवेशात् । अथैवमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जागर्तीति मा वह गर्वं, पक्षवृत्तित्वस्याऽपि तथात्वात् ।

अनुवाद—तत्रेति । सव्यभिचार हेत्वाभासके साधारण आदि तीन भेदोंके मध्यमें । अब साधारण व्यभिचारके लक्षणमें विरुद्धकी अतिव्याप्ति हो गयी, ऐसा कहकर दर्प (घमण्ड) मत करो, पूर्वोक्त लक्षणमें 'सपक्षवृत्तित्वविशिष्ट-साध्याऽभाववद्वृत्तित्वम्' ऐसा भाग रखनेसे दोष नहीं होता है । अब ऐसा करनेपर भी स्वरूपाऽसिद्धिका दूषण जागरित है, ऐसा समझकर गर्व मत करो । पूर्वोक्त लक्षणमें 'पक्षवृत्तित्व'का भी समावेश होनेसे दोष नहीं है ।

टिप्पणी—इस प्रकार 'पक्षसपक्षवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववद्वृत्तित्वं साधारणत्वम्' ऐसा परिष्कृत लक्षण सम्पन्न हुआ ।

असाधारणस्य लक्षणमुदाहरणं च—

सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः । पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः । यथा—शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं हि सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्तिः ।

अनुवाद—असाधारण अनैकान्तिकका लक्षण करते हैं—'सर्वसपक्षविपक्ष-व्यावृत्तत्वे सति पक्षमात्रवृत्तित्वम् असाधारणत्वम् ।' अर्थात् जो हेतु समस्त सपक्ष और विपक्षोंमें न रहकर केवल पक्षमें रहता है, उसे 'असाधारण' कहते हैं । जैसे—'शब्दो नित्यः शब्दत्वात्' यहाँपर पक्ष शब्दमें, नित्यत्वरूप साध्यकी सिद्धिके लिए जो शब्दत्व हेतु दिया है, वह सपक्ष नित्योंमें (आकाश आदिमें) और विपक्ष अनित्योंमें (घट आदिमें) न रहकर केवल पक्ष शब्दमें रहता है; इसलिए यहाँपर असाधारण नामक व्यभिचार हुआ है ।

सर्वसपक्षेति । सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति (सर्व-) सपक्षविपक्षव्यावृत्तः । केवलव्यतिरेकिवारणाय तद्भिन्न इत्यपि देयम् ।

अनुवाद—सर्वेति । सब जो सपक्ष और विपक्ष उनसे व्यावृत्त होकर जो रहता है, उसे '(सर्व) सपक्षविपक्षव्यावृत्त' कहते हैं । केवल व्यतिरेकिमें पूर्वोक्त लक्षण घटित होता है, अतः उसे निवारण करनेके लिए 'तद्भिन्न' पद देना चाहिए । ऐसा करनेपर लक्षणका स्वरूप हुआ—'केवलव्यतिरेकिभिन्नत्वे सति सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तत्वे च सति पक्षमात्रवृत्तित्वम् असाधारणत्वम्' ।

अनुपसंहारिणो लक्षणमुदाहरणं च—

अन्वयव्यतिरेकिदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी। यथा—सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति। अत्र सर्वस्यापि प्रमेयत्वाद् दृष्टान्तो नाऽस्ति।

अनुवाद—अनुपसंहारी अनैकान्तिकका लक्षण करते हैं—अर्थात् अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्तसे रहित हेतुको 'अनुपसंहारी' कहते हैं। जैसे—'सर्वम् अनित्यं प्रमेयत्वात्'। यहाँ पक्ष सर्वमें अनित्यत्वरूप साध्यकी सिद्धिके लिए प्रमेयत्व हेतु है, पक्ष सर्व (पदार्थ) है, उससे अतिरिक्त कुछ भी पदार्थ नहीं है, अतः दृष्टान्तके नहीं होनेसे यह 'अनुपसंहारी' अनैकान्तिक हुआ है।

अन्वयेति। केवलान्वयिनि अतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेति। केवलव्यतिरेकिणि अतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरेकेति। अत्रेति। उपदर्शिताऽनुमान इत्यर्थः।

अनुवाद—अन्वयेति। व्यतिरेकदृष्टान्तसे रहित केवलान्वयिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अन्वय' पद दिया है। अन्वय दृष्टान्तसे रहित केवलव्यतिरेकिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'व्यतिरेक' पद दिया है। 'अत्र' इस पदका अर्थ है—समीप प्रदर्शित अनुमानमें।

विरुद्धस्य लक्षणमुदाहरणं च—

साध्याऽभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। यथा—शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति। अत्र कृतकत्वं हि नित्यत्वाऽभावेनाऽनित्यत्वेन व्याप्तम्।

अनुवाद—विरुद्धका लक्षण करते हैं—साध्यके अभावमें व्याप्त हेतुको विरुद्ध (हेत्वाभास) कहते हैं। जैसे—'शब्दो नित्यः कृतकत्वात्'। यहाँपर पक्ष शब्दमें नित्यत्वरूप साध्यकी सिद्धिके लिए कृतकत्व (जन्यत्व) हेतु अनित्यत्व-रूप साध्याऽभावमें व्याप्त है, क्योंकि 'यत्र यत्र कृतकत्वं तत्र तत्र अनित्यत्वम्' ऐसी व्याप्ति है। इस प्रकार हेतु कृतकत्वके नित्यत्वाऽभावरूप साध्याभावमें व्याप्त होनेसे यह विरुद्ध नामक हेत्वाभास है।

विरुद्धं लक्षयति—साध्येति। सद्धेतुवारणाय साध्याऽभावव्याप्त इति। सत्प्रतिपक्षवारणाय सत्प्रतिपक्षभिन्न इत्यपि बोध्यम्। कृतकत्वादिति। कार्यत्वादित्यर्थः। व्याप्तमिति। यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यम् इति व्याप्तिर्भवत्येव तथेति भावः।

अनुवाद—विरुद्धका लक्षण करते हैं—साध्येति। केवल 'हेतु' पद देंगे तो सद्धेतुमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'साध्याऽभावव्याप्त' ऐसा हेतुका विशेषण दिया। इतना करनेपर भी पूर्वोक्त लक्षणमें सत्प्रतिपक्षमें अति-

व्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'सत्प्रतिपक्षभिन्नः' इसका निर्देश करना चाहिए। कृतकत्वादिति। कार्यत्व होनेसे यह तात्पर्य है। व्याप्तमिति। जो-जो कृतक (जन्य) है, वह-वह अनित्य है, ऐसी व्याप्ति होती है। कृतकत्व अनित्यत्वसे व्याप्त है, जैसे—घट कृतक (जन्य) है, अतः अनित्य है।

सत्प्रतिपक्षस्य लक्षणमुदाहरणं च—

यस्य साध्याऽभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः। यथा—शब्दो नित्यः श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवत्।

अनुवाद—जिसके साध्याऽभाव(साध्यके अभाव)का साधक दूसरा हेतु रहता है, उस हेतुको 'सत्प्रतिपक्ष' कहते हैं। जैसे–'शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत्।' यहाँपर पक्ष शब्दमें साध्य नित्यत्वको सिद्ध करनेके लिए श्रवणत्व हेतु दिया है और शब्दत्व उदाहरण है।

इसके प्रतिपक्षरूपमें–'शब्दः अनित्यः कार्यत्वाद घटवत्'—यहाँ शब्द पक्ष है, अनित्यत्व साध्य है, हेतु कार्यत्व है और घट उदाहरण है। यहाँ पूर्वाऽनुमानमें शब्दमें नित्यत्वकी सिद्धिके लिए श्रावणत्व हेतु दिया है, दूसरे अनुमानमें शब्दमें अनित्यत्वकी सिद्धिके लिए दूसरा हेतु 'कार्यत्व' दिया गया है, अतः 'सत्प्रतिपक्ष' नामका हेत्वाभास हुआ है।

सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—साध्येति। यस्य=हेतोः। साध्याऽभावसाधकं=साध्याऽभावस्याऽनुमापकं, हेत्वन्तरं=प्रतिपक्षो हेतुर्विद्यते स हेतुः सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थः। अयमेव प्रकरणसम इत्युच्यते। विरुद्धवारणाय हेत्वन्तरं यस्येति। वह्न्याद्यादिवारणाय साध्याऽभावेति।

अनुवाद—सत्प्रतिपक्षका लक्षण करते हैं—साध्येति। जिस हेतुके साध्यके अभावका साधक (साध्यके अभावका अनुमापक=अनुमान करानेवाला) हेत्वन्तर=दूसरा हेतु अर्थात् प्रतिपक्ष (प्रतिकूलपक्ष) हेतु है, वह हेतु सत्प्रतिपक्ष है, यह तात्पर्य है। इसीको 'प्रकरणसम' भी कहते हैं। विरुद्धमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'हेत्वन्तरम्' यह पद दिया है। 'साधकं हेत्वन्तरं यस्य सः' इतना ही दें तो वह्निरूप साध्यका साधक हेतु जैसे धूम है, वैसे (हेत्वन्तर) अन्य हेतु आलोक (प्रकाश) भी है, उसकी अतिव्याप्ति हटानेके लिए साधकका व्यधिकरण विशेषण 'साध्याभाव' पद दिया गया है।

असिद्धस्य त्रैविध्यम्—

असिद्धस्त्रिविधः—आश्रयाऽसिद्धः, स्वरूपाऽसिद्धः, व्याप्यत्वाऽसिद्धश्चेति ।

अनुवाद—असिद्धके तीन भेद हैं—आश्रयाऽसिद्ध, स्वरूपाऽसिद्ध और व्याप्यत्वाऽसिद्ध ।

असिद्धं विभजते—असिद्ध इति । आश्रयाऽसिद्धाद्यन्यतमत्वम् असिद्धत्वम् ।

अनुवाद—असिद्धका विभाग करते हैं—असिद्ध इति । असिद्धका लक्षण कहते हैं—'आश्रयाऽसिद्धाद्यन्यतमत्वम् असिद्धत्वम्' अर्थात् आश्रयाऽसिद्ध आदिमेंसे किसी एकको असिद्ध कहते हैं ।

आश्रयाऽसिद्धस्योदाहरणम्—

आश्रयासिद्धो यथा—गगनाऽरविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्, सरोजाऽरविन्दवत् । अत्र गगनाऽरविन्दमाश्रयः, स च नाऽस्त्येव ।

अनुवाद—आश्रयाऽसिद्धका उदाहरण देते हैं—'गगनाऽरविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजाऽरविन्दवत्' यहाँपर गगनाऽरविन्द पक्ष है, सुरभित्व साध्य है, अरविन्दत्व हेतु है और सरोजाऽरविन्द उदाहरण है । यहाँ गगनाऽरविन्द (आकाशका कमल) आश्रय है, वह है नहीं । जब कि आकाशमें कमल नहीं है तो फिर उसमें सौरभ कैसे रहेगा ?

आश्रयाऽसिद्ध इति । आश्रयासिद्धत्वं च पक्षताऽवच्छेदकाऽभाववत्पक्षकत्वम् । भवति हि अरविन्दत्वे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाऽभाववत्पक्षकत्वम्, अरविन्दरूपपक्षे गगनीयत्वविरहात् । ननु कथमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत आह—अत्रेति । उपदर्शिताऽनुमान इत्यर्थः ।

अनुवाद—आश्रयाऽसिद्ध इति । आश्रयाऽसिद्धका लक्षण है—'पक्षताऽवच्छेदकाऽभाववत्पक्षकत्वम् आश्रयाऽसिद्धत्वम् ।' अर्थात् पक्षताऽवच्छेदक(पक्षत्व)-का अभाववाला पक्ष जिस हेतुका है, उसे आश्रयाऽसिद्ध कहते हैं । 'गगनाऽरविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात्' इस अनुमानमें गगनाऽरविन्द पक्ष है, पक्षतावच्छेदक है गगनीयत्व, वह अरविन्दरूप पक्षमें नहीं है । अरविन्दमें गगनीयत्वका अभाव कैसे है ? इसका उत्तर देते हैं—अत्रेति । उपदर्शित अनुमानमें सौरभका आश्रय गगनाऽरविन्द है, उसका अभाव है, उसी तरह अरविन्दका आश्रय गगन भी नहीं है ।

स्वरूपाऽसिद्धस्योदाहरणम्—

स्वरूपाऽसिद्धो यथा—'शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्' । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नाऽस्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् ।

अनुवाद—स्वरूपाऽसिद्धका लक्षण करते हैं—'पक्षनिष्ठहेत्वभावत्वं स्वरूपाऽसिद्धत्वम् ।' अर्थात् जहाँपर पक्षमें हेतु नहीं रहता है, उसे स्वरूपाऽसिद्ध कहते हैं। उदाहरण देते हैं—शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्—यहाँ शब्दरूप पक्षमें गुणरूप साध्यकी सिद्धिके लिए जो चाक्षुषत्व हेतु दिया है, वह पक्ष शब्दमें नहीं है, क्योंकि शब्द तो श्रवण-इन्द्रियसे सुने जानेसे श्रावण है, रूपके समान चाक्षुष (चक्षुसे देखा जानेवाला) नहीं है।

स्वरूपाऽसिद्ध इति । पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । सद्धेत्वभावेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्ष इति । घटाद्यभाववारणाय हेत्विति । सोऽयं स्वरूपाऽसिद्धः शुद्धाऽसिद्ध-भागाऽसिद्ध-विशेषणाऽसिद्ध-विशेष्याऽसिद्धभेदेन चतुर्विधः । तत्र आद्यस्तु उपदर्शित एव । द्वितीयो यथा—उद्भूतरूपादिचतुष्टयं गुणः रूपत्वाद्, इत्यत्र रूपत्वहेतोः पक्षैकदेशाऽवृत्तित्वेन तस्य भागे स्वरूपाऽसिद्धत्वम् । तृतीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वात् इत्यत्र रूपवत्त्वविशेषणस्य वायावबृत्तेः तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्याऽपि तथात्वेन तस्य स्वरूपाऽसिद्धत्वं निर्वहति, विशेषणाऽभावे विशिष्टस्यापि अभावात् । तुरीयो यथा—अत्रैव विशेषणविशेष्यवैपरीत्येन हेतुः । तस्य स्वरूपाऽसिद्धत्वं तु विशेष्याऽभावप्रयुक्त-विशिष्टाऽभावादिति बोध्यम् ।

अनुवाद—स्वरूपाऽसिद्ध इति । पक्षमें हेतुके न रहनेसे स्वरूपाऽसिद्धि होती है । जहाँ स्वरूपाऽसिद्धि हो, उसे 'स्वरूपाऽसिद्ध' कहते हैं । सद्धेतुमें भी किसी हेतुका अभाव रहनेसे अतिव्याप्ति होगी, उसको हटानेके लिए 'पक्षे' पद दिया गया है ।

'पक्षे अभावः' इतना ही लिखेंगे तो पक्षमें अभाव अर्थात् घट आदिके अभावमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'हेतु' पद दिया है । स्वरूपासिद्धके चार भेद हैं—शुद्धाऽसिद्ध, भागाऽसिद्ध, विशेषणाऽसिद्ध और विशेष्याऽसिद्ध । इनमें पहला (शुद्धाऽसिद्ध) प्रदर्शित हो चुका है । दूसरा (भागाऽसिद्ध) जैसे—उद्भूत रूप आदि चार (रूप, रस, गन्ध और स्पर्श) गुण हैं, रूपत्व होनेसे, यहाँ रूपत्व हेतु केवल रूपमें है, पक्ष(रूप आदि चारों)में एकदेश रस, गन्ध और स्पर्शमें नहीं है, इसलिए हेतु रूपत्वके पक्षके एकदेशमें रहनेसे भागाऽसिद्ध नामक स्वरूपाऽसिद्ध हुआ । तीसरा (विशेषणाऽसिद्ध) जैसे—'वायुः प्रत्यक्षः रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वात्' । यहाँ पर वायु पक्ष है, प्रत्यक्षत्व साध्य है, 'रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वं' हेतु है । सत्यन्त विशेषण होता है । सो रूपवत्त्व विशेषणके वायुमें न रहनेसे रूपवत्त्व विशेषणविशिष्ट स्पर्शवत्त्व भी नहीं है, अतः विशेषण(रूपवत्त्व)के अभावसे रूपवत्त्वविशिष्ट स्पर्शका भी

अभाव होनेसे स्वरूपाऽसिद्ध हेत्वाभास हो जाता है। चौथा (विशेष्याऽसिद्ध) जैसे—यहीं पर विशेषण और विशेष्यके विपरीत भावसे हेतुके होनेपर अर्थात्—'वायुः प्रत्यक्षः स्पर्शवत्त्वे सति रूपवत्त्वात्'। यहाँपर वायु पक्ष है, प्रत्यक्षत्व साध्य है, उसकी सिद्धिके लिए स्पर्शवत्त्व-विशेषण-विशिष्ट रूपवत्त्व हेतु है। यहाँपर वायुमें स्पर्शके रहनेपर भी स्पर्शवत्त्व, विशेषण-विशिष्ट रूपवत्त्वविशेष्यके न रहनेसे विशेष्याऽभावप्रयुक्तविशिष्टाऽभाव होनेसे स्वरूपाऽसिद्ध हुआ।

व्याप्यत्वाऽसिद्धस्य लक्षणमुपाधिरूपं च किम्—

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वाऽसिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाऽव्यापकत्वमुपाधिः। साध्यसमानाऽधिकरणाऽत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम्। साधनवन्निष्ठाऽत्यन्ताऽभावाऽप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्। यथा—पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्र आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। तथा हि–यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकत्वम्। यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति। अयोगोलके आर्द्रेन्धनसंयोगाऽभावादिति साधनाऽव्यापकत्वम्। एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाऽव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वाऽसिद्धम्।

अनुवाद–उपाधिसे युक्त हेतुको 'व्याप्यत्वासिद्ध' कहते हैं। उपाधिका लक्षण करते हैं–साध्यका व्यापक होकर जो साधनका अव्यापक है, उसे 'उपाधि' कहते हैं। साध्यके अधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताऽभावका जो प्रतियोगी नहीं है, उसे 'साध्यव्यापक' कहते हैं। जैसे कि—'पर्वतो धूमवान् वह्नेः' यहाँपर साध्य हुआ धूम, उसका अधिकरण (आश्रय) हुआ पर्वत, उसमें घटका अभाव है। घटाऽभावका प्रतियोगी हुआ घट, अप्रतियोगी हुआ आर्द्र इन्धनका संयोग। इसी तरह साधनवान्(हेतुके अधिकरण)में रहनेवाले अत्यन्ताभावका जो प्रतियोगी है, उसे 'साधनाऽव्यापक' कहते हैं, जैसे—साधन हुआ वह्नि, उसका आश्रय हुआ अयोगोलक (संतप्त लौहपिण्ड), उसमें रहनेवाला अभाव हुआ आर्द्रेन्धनसंयोगाऽभाव, उसका प्रतियोगी हुआ आर्द्रेन्धनसंयोग। जैसे—'पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्' अर्थात् पर्वत धूआँवाला है, वह्निका अधिकरण (आश्रय) होनेसे। यहाँपर आर्द्र इन्धनका संयोग 'उपाधि' है। जैसे कि—जहाँ धूँआँ है, वहाँ आर्द्र इन्धनका संयोग है, यहाँपर आर्द्र इन्धनका संयोग(साध्य धूम)का व्यापक है। इस तरह जहाँ वह्नि है, वहाँ आर्द्र इन्धनका संयोग नहीं है, अयोगोलक(सन्तप्त लौहपिण्ड)में आर्द्र इन्धनका

संयोग न होनेसे। यहाँ पर आर्द्रेन्धनसंयोगकी व्याप्ति साधन(अयोगोलकस्य वह्नि)में न रहनेसे साधनाऽव्यापकत्व हुआ। इस प्रकार साध्य(धूम)में व्यापक होकर साधन(अयोगोलकस्य वह्नि)में व्यापक न होनेसे आर्द्र इन्धनका संयोग उपाधि हुआ। उपाधियुक्त होनेमें वह्निमत्त्व व्याप्यत्वाऽसिद्ध हुआ।

व्याप्यत्वासिद्धं लक्षयति—सोपाधिक इति। ननु कोऽयमुपाधिरित्यत आह—साध्येति। साधनाऽव्यापक उपाधिरित्युक्ते शब्दोऽनित्यः कृतकत्वाद् इत्यत्र सामान्यवत्त्वे सति अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणाऽर्हत्वम् अपि उपाधिः स्यात्तदर्थं साध्यव्यापकत्वमुक्तम्। तावत्युक्ते सामान्यवत्त्वादिनाऽनित्यत्वसाधने कृतकत्व-मुपाधिः स्यात्तदर्थं साधनाव्यापकत्वमुक्तम्। उपाधिभेदमादाय असम्भववारणाय व्यापकत्वशरीरेऽपि अत्यन्तपदमादेयम्। साधनभेदमादाय साधनस्योपाधित्व-वारणाय अव्यापकत्वशरीरेऽपि अत्यन्तपदमवश्यं देयम्।

सोऽयमुपाधिस्त्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः, पक्षधर्माऽवच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनाऽवच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति। तत्र आद्य उपदर्शितः। एवं क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा अधर्मजनिका, हिंसात्वात्, क्रतुबाह्यहिंसावदित्यत्र निषिद्धत्वमुपाधिः। तस्य यत्राऽधर्मजनकत्वं तत्र निषिद्धत्वमिति साध्यव्यापकता। यत्र हिंसात्वं तत्र न निषिद्धत्वमिति निषिद्धत्वमुपाधिः साधनाऽव्यापकः, क्रतुहिंसायां निषिद्धत्वाऽभावात् 'मा हिंस्यात्सर्वा भूतानी'ति सामान्यवाक्यतः 'पशुना यजेत' इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात्। अत्र हिंसात्वं नाऽधर्मजनकत्वे प्रयोजकम्। अपि तु निषिद्धमेवेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम्। द्वितीयो यथा—'वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वाद्' इत्यत्र उद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः। तस्य तत्र प्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं, रूपे व्यभिचारात्, किन्तु द्रव्य-त्वलक्षणो यः पक्षधर्मः तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र तत्र उद्भूतरूपवत्त्वमिति पक्षधर्माऽवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। आत्मनि व्यभिचारवारणाय बहिः पदम्। यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वमिति साधनाव्यापकत्वं च वायौ, तत्र उद्भूतरूपविरहात्। तृतीयो यथा—ध्वंसो विनाशी, जन्यत्वाद् इत्यत्र भावत्वमुपाधिः, तस्य यत्र विनाशित्वं तत्र भावत्वम् इति न केवलसाध्यव्याप-कत्वप्रागभावे भावत्वविरहात्, किन्तु जन्यत्वरूपसाधनाऽवच्छिन्नविनाशित्वं यत्र तत्र भावत्वमिति साधनाऽवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। यत्र जन्यत्वं तत्र भावत्वमिति साधनाऽव्यापकत्वं च ध्वंसे, तत्र भावत्वविरहात्। एवं स श्यामो

मित्रातनयत्वाद् इत्यत्र शाकपाकजत्वम् उपाधिः। श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वात् न केवलसाध्यव्यापकत्वं, किन्तु साधनाऽवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाऽव्यापकत्वं चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम्।

अनुवाद—व्याप्यत्वाऽसिद्धका लक्षण करते हैं—सोपाधिक इति। उपाधि क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं—साध्येति। 'साधनाऽव्यापक उपाधिः' अर्थात् साधनका अव्यापक उपाधि है, केवल इतना ही लक्षण करें तो 'शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात्' अर्थात् शब्द अनित्य है, कृतक (जन्म) होनेसे। यहाँपर 'सामान्यवत्त्वे सति अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणाऽर्हत्वम्' अर्थात् सामान्य (जातिवाला) होकर अस्मदादिके बाह्य इन्द्रियसे ग्रहणाऽर्ह (ग्रहणके योग्य) यह उपाधि होगा, उसको हटानेके लिए 'साध्यव्यापकत्वम्' ऐसा लक्षण दिया है। अब 'साध्यव्यापकत्वम् उपाधित्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो 'शब्दः अनित्यः सामान्यवत्त्वात्' यहाँपर अनित्यत्व साधनमें 'कृतकत्व' उपाधि होगा, इसलिए 'साधनाऽव्यापकत्व' ऐसा पद दिया गया है। उपाधिभेदको लेकर असम्भवको हटानेके लिए व्यापकत्वमें भी 'अत्यन्त' पद देना चाहिए। अर्थात् 'साध्याऽत्यन्तव्यापकत्वे सति' ऐसा लक्षण करना चाहिए। इसी प्रकार साधनभेदको लेकर साधनका उपाधित्व हटानेके लिए अव्यापकत्वशरीरमें भी अत्यन्त पद अवश्य देना चाहिये।

यह उपाधि तीन प्रकारकी है—केवल साध्यव्यापक, पक्षधर्माऽवच्छिन्न साध्यव्यापक और साधनाऽवच्छिन्न साध्यव्यापक। इनमें पहला केवल साध्यव्यापक समीपमें दिखाया जा चुका है। इसी तरह 'क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा (यज्ञके भीतर होनेवाली हिंसा) अधर्मजनिका (अधर्मको पैदा करनेवाली है), हिंसात्वात् (हिंसात्वसे), क्रतुबाह्यहिंसावत् (यज्ञके बाहर होनेवाली हिंसाके समान)'। यहाँपर निषिद्धत्व (निषेधविशिष्ट) उपाधि है। उस- (निषिद्धत्व उपाधि)की जहाँ अधर्मजनकत्व है, वहाँ निषिद्धत्व है, इस प्रकार साध्यव्यापकता=साध्य अधर्मजनिकात्वकी व्यापकता है। जहाँ हिंसात्व है, वहाँ निषिद्धत्व नहीं है। इस प्रकार निषिद्धत्व उपाधि साधनाऽव्यापक (साधन=हिंसात्वका अव्यापक) है, क्रतुहिंसा(वेद-विहित हिंसा)में भी हिंसात्व हैं, परन्तु उसमें निषिद्धत्व नहीं है। 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' सब भूतोंकी हिंसा नहीं करनी चाहिए, इस सामान्य वाक्यसे 'पशुना यजेत' अर्थात् पशुसे यज्ञ करे, इत्यादि विशेष वाक्य बलवत्तर (जबर्दस्त) है, इस कारणसे अधर्मको उत्पन्न करनेमें हिंसात्व प्रयोजक (कारण) नहीं है, बल्कि निषिद्धत्व (निषेधविशिष्टत्व) प्रयोजक है, इत्यादि देखना चाहिए।

दूसरा—पक्षधर्माऽवच्छिन्न साध्यव्यापक है, जैसे—'वायुः प्रत्यक्षः (वायु प्रत्यक्ष है), प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात् (प्रत्यक्ष स्पर्शका आश्रय होनेसे)'। यहाँपर उद्भूतरूपवत्त्व (उद्भूत रूपसे युक्त होना) उपाधि है। प्रत्यक्षके प्रयोजक- (कारणं)को 'उद्भूत' कहते हैं। उस(उद्भूतरूपवत्त्व उपाधि)का 'यत्र प्रत्यक्षत्वं तत्र उद्भूतरूपवत्त्वम्' (जहाँ प्रत्यक्षत्व है, वहाँ उद्भूतरूपवत्त्व है), यहाँपर केवल साध्यव्यापकत्व नहीं है, रूपमें व्यभिचार होनेसे किन्तु द्रव्यत्व-धर्मविशिष्ट जो पक्षधर्म, उससे युक्त बहिःप्रत्यक्षत्व जहाँ है, वहाँ उद्भूत-रूपवत्त्व है। इस तरह पक्षधर्माऽवच्छिन्न (पक्षधर्मसे युक्त) साध्यका व्यापकत्व ही है। आत्मामें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'बहिः' पद दिया है। जहाँ प्रत्यक्ष-स्पर्शाश्रयत्व है, वहाँ उद्भूतरूपवत्त्व (उद्भूतरूपवालेका धर्म) नहीं है, इस प्रकारसे साधनाव्यापकत्व (साधन=प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयका अव्यापकत्व) है, क्योंकि वायुमें उद्भूत रूप नहीं है।

तीसरा—साधनाऽवच्छिन्न साध्यव्यापक, जैसे—'ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्' यहाँ भावत्व उपाधि है। उसका जहाँ विनाशित्व है वहाँ भावत्व है, इस प्रकार केवल साध्य(विनाशित्व)का व्यापकत्व नहीं है, क्योंकि प्रागभावमें भावत्व नहीं है, किन्तु जन्यत्वरूपसाधनाऽवच्छिन्न विनाशित्व जहाँ है, वहाँ भावत्व है। इस प्रकार साधनाऽवच्छिन्न साध्यव्यापकत्व ही हैं। अर्थात् भावत्वका जन्यत्व-रूपसाधनसे युक्त साध्य विनाशीका व्यापकत्व ही है। जहाँ जन्यत्व है वहाँ भावत्व नहीं है, इस प्रकार साधनाऽव्यापकत्व (साधन=जन्यत्वका अव्यापकत्व) भी है। क्योंकि ध्वंसमें जन्यत्व है परन्तु भावत्व नहीं है।

इसी प्रकार 'स श्यामो मित्रातनयत्वात्' अर्थात् वह श्याम (काला) है मित्राका पुत्र होनेसे, यहाँपर शाक-पाकजन्यत्व (सागके पाकसे उत्पन्नता) उपाधि है। श्यामत्वकी स्थिति नीलघटमें भी रहनेसे यह केवल साध्य- (श्यामत्व)का व्यापक नहीं है, किन्तु साधनाऽवच्छिन्न साध्यव्यापकत्व ही है, अर्थात् साधन(मित्रातनयत्व)से युक्त साध्य(श्यामत्व)का व्यापक ही है। मित्राके अष्टम (आठवें) पुत्रमें शाकपाकजत्व(शाकके पाकसे उत्पन्नत्व)के न रहनेसे साधनाऽव्यापकत्व (साधन=मित्रातनयत्वका अव्यापक) भी है, इत्यादि भी जानना चाहिए।

बाधितस्य लक्षणमुदाहरणं च—

यस्य साध्याऽभावः प्रमाणान्तरेण पक्षे निश्चितः स बाधितः। यथा—

वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति। अत्राऽनुष्णत्वं साध्यं, तदभाव उष्णत्वं स्पार्शनप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम्!

अनुवाद—बाधित (हेत्वाभास) का लक्षण करते हैं—जिस हेतुका साध्याभाव (साध्यका अभाव) अन्य प्रमाणसे पक्षमें निश्चित है, उसे 'बाधित' कहते हैं, जैसे—'वह्निः अनुष्णो द्रव्यत्वात्' इति। यहाँ अनुष्णत्व (गरम न होना) साध्य है। उसमें हेतु दिया है द्रव्यत्व, पर साध्य अनुष्णत्वका अभाव उष्णत्व स्पार्शन (त्वक् इन्द्रियसे उत्पन्न) प्रत्यक्षसे गृहीत होता है, इसलिए यहाँ हेतुमें बाधितत्व है।

इति तर्कसंग्रहेऽनुमानखण्डः।

यस्येति। सद्धेतुवारणाय प्रमाणान्तरेणेति। घटाद्यभावमादाय धूमवारणाय साध्येति।

इति पदकृत्येऽनुमानखण्डः।

अनुवाद—यस्येति। सद्धेतुमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'प्रमाणान्तरेण' पद दिया है। 'साध्याऽभावः' के स्थानपर केवल 'अभाव' देनेसे घटादिके अभावको लेकर धूममें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'साध्य' पद दे दिया है।

पदकृत्यके अनुवादमें अनुमानखण्ड समाप्त हुआ।

अथोपमानखण्डः

उपमितिकरणमुपमानम्। संज्ञा-संज्ञिसम्बन्धत्वज्ञानम् उपमितिः। तत्करणं सादृश्यज्ञानम्। तथा हि—कश्चित् गवयपदाऽर्थमजानन्कुतश्चिदारण्यकपुरुषात् 'गोसदृशो गवय' इति श्रुत्वा वनं गतो 'गोसदृशो गवय' इति वाक्याऽर्थं स्मरन् गोसदृशं पिण्डं पश्यति। तदनन्तरमसौ 'अयं गवयशब्दवाच्य' इत्युपमितिरुत्पद्यते।

अनुवाद—उपमितिके करण (असाधारण कारण) को 'उपमान' कहते हैं। संज्ञा (पद) और संज्ञी (पदार्थ) इनके सम्बन्धज्ञानको 'उपमिति' कहते हैं। उपमितिका करण सादृश्यज्ञान है! जैसे—गवयपदके अर्थको न जाननेवाला कोई पुरुष किसी वनवासी पुरुषसे 'गवय गायके सदृश होता है'—ऐसा सुनकर वनमें गया और 'गायके सदृश गवय होता है' ऐसे वाक्यार्थको स्मरण कर गायके सदृश पिण्डको देखता है। उसके बाद उसे यह (पशु) गवय शब्दका वाच्य (अर्थ) है—ऐसी उपमिति उत्पन्न होती है।

इति तर्कसंग्रह उपमानखण्डः।

अवसरसङ्गतिमभिप्रेत्य अनुमानाऽनन्तरमुपमानं निरूपयति—उपमितीति। उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः। कुठारादिवारणाय मितीति। प्रत्यक्षादिवारणाय उपेति। संज्ञासंज्ञीति। अनुमित्यादिवारणाय सम्बन्धेति। संयोगादिवारणाय संज्ञासंज्ञीति। वाच्य इति। अभिप्रेतो गवयो गवयपदवाच्य इत्यर्थः। तेन गवयान्तरे शक्तिग्रहाऽभावप्रसङ्ग इति दूषणमपास्तम्। तथा च गोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम्। अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः। उपमितिः फलमिति सारम्। तच्चोपमानं त्रिविधं—सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानम्, असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानं वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च तत्राद्यमुक्तमेव। द्वितीयं यथा—खड्गमृगः कीदृक्? इति पृष्टे नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्चेति तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशं पिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्याऽर्थं स्मरति। तदनन्तरं खड्गमृगे खड्गमृगपदवाच्य इत्युपमितिः उत्पद्यते। अत्र नासिकालसदेकशृङ्ग एव असाधारणधर्मः। तृतीयं यथा–उष्ट्रः कीदृक्? इति पृष्टे अश्वादिवन्न समानपृष्ठो न ह्रस्वग्रीवशरीरश्चेति आप्तोक्ते कालान्तरे तत्पिण्डदर्शनाद्वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणं, तत उष्ट्रः उष्ट्रपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते।

इति पदकृत्य उपमानखण्डः।

अनुवाद—अवसरसङ्गतिको अभिप्राय कर अनुमानके अनन्तर उपमानका निरूपण करते हैं—उपमितीति। उपमितिका करण उपमान है। 'उपकरणम् उपमानम्' केवल ऐसा लक्षण करेंगे तो छेदनका उपकरण (साधन) कुठार भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'मिति' पद दिया। अब केवल 'मितेः करणम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो मिति (मान) अर्थात् प्रत्यक्ष आदि मितिके करणमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसको हटानेके लिए 'उप' पद दिया है। संज्ञासंज्ञीति। 'संज्ञासंज्ञिज्ञानम् उपमितिः' ऐसा लक्षण करेंगे तो संज्ञा (पद) और संज्ञी (पदार्थ) इनका ज्ञान तो अनुमिति आदिसे भी हो सकता है, अतः उनमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'सम्बन्ध' पद दिया गया है। 'सम्बन्धज्ञानम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो सम्बन्धज्ञान संयोग आदिमें भी होता है, अतः अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संज्ञासंज्ञि' पद दिया है। वाच्य इति। अभिप्रेत (अभिप्रायविशिष्ट) गवय, गवयपद वाच्य है, यह तात्पर्य है। उस कारणसे शक्तिग्रहवाले गवयसे भिन्न गवयमें शक्तिग्रह नहीं होगा, ऐसा दूषण दूर हुआ।

इस प्रकार उपमानमें गोसादृश्यसे विशिष्ट पिण्डका ज्ञान करण है। अति-

देश वाक्य='गो-सदृश गवय है' ऐसे अतिदेश वाक्यके अर्थका स्मरण अवान्तर व्यापार है। उपमिति फल है, यह सार हुआ।

उस उपमानके तीन भेद हैं—सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञान, असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञान और वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञान। उनमें पहला सादृश्यविशिष्ट-पिण्डज्ञान मूलमें ही कह चुके हैं। दूसरा असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञान, जैसे—खड्गमृग (गैंडा) कैसा होता है? ऐसा पूछनेपर 'नाकमें एक सींगवाला जो हाथीके आकारसे अधिक नहीं होता है' ऐसा खड्गमृगके जानकारोंसे सुन कर दूसरे समयमें वैसे पिण्ड(शरीर)को देखता हुआ अतिदेश वाक्यके अर्थ-को स्मरण करता है, उसके बाद खड्गमृग(गैंडे)में यह खड्गमृगका वाच्य है, ऐसी उपमिति उत्पन्न होती है। यहाँपर नाकमें एक सींगवाला होना ही असाधारण धर्म है।

तीसरा वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञान, जैसे–ऊँट कैसा होता है? ऐसा पूछनेपर 'जो अश्व आदिके समान पीठवाला नहीं है और जिसकी ग्रीवा और शरीर ह्रस्व (बौना) नहीं होता है' ऐसा आप्त(यथार्थवक्ता)के कहनेपर कालान्तरमें वैसे पिण्डको देखनेसे घोड़े आदिके वैधर्म्यसे विशिष्ट पिण्डका ज्ञान होता है, तब अतिदेश वाक्यके अर्थका स्मरण होता है, अनन्तर 'ऊँट-ऊँट पदका वाच्य (अर्थ) है' इस प्रकारकी उपमिति उत्पन्न हो जाती है।

पदकृत्यके उपमानखण्डका अनुवाद समाप्त हुआ।

अथ शब्दखण्डः

शब्दप्रमाणस्य स्वरूपम्—

आप्तवाक्यं शब्दः। आप्तस्तु यथाऽर्थवक्ता। वाक्यं पदसमूहः; यथा—गामानयेति। शक्तं पदम्। अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसङ्केतः शक्तिः।

अनुवाद—शब्दप्रमाणका लक्षण करते हैं—'आप्तवाक्यत्वं शब्दत्वम्' अर्थात् आप्तके वाक्यको 'शब्द' कहते हैं। आप्तका लक्षण करते हैं—'यथाऽर्थवक्तृत्वम् आप्तत्वम्' अर्थात् जो यथार्थ (सत्य) बोलता है, उसे 'आप्त' कहते हैं। वाक्य-का लक्षण करते हैं–'पदसमूहत्वं वाक्यत्वम्' अर्थात् पदोंके समूहको 'वाक्य' कहते हैं। जैसे कि—'गाम् आनय' अर्थात् गायको लाओ। यहाँपर 'गाम्' यह सुबन्त पद है और 'आनय' यह तिङन्त पद है, इस प्रकार दो पद मिलकर यह एक

वाक्य हो गया है। पदका लक्षण है—'सुप्तिङन्तत्वं पदत्वम्' अर्थात् जिसके अन्तमें सुप् वा तिङ् विभक्ति हो, उसे 'पद' कहते हैं। सामान्यतः पदके दो भेद होते हैं—सुबन्त और तिङन्त पद। सु आदि विभक्तिवाले पदको सुबन्तपद (जैसे 'गाम्' आदि) और तिप् आदि विभक्तिवाले पद(जैसे 'आनय' आदि)· को तिङन्त पद कहते हैं। न्यायके अनुसार पदका लक्षण करते हैं—'शक्तत्वं पदत्वम्' अर्थात् 'शक्त'(शक्तिके आश्रय)को 'पद' कहते हैं। इस पदसे यह अर्थ जानना चाहिए, ऐसे ईश्वरसङ्केतको शक्ति कहते हैं।

अवसरसङ्गतिमभिप्रेत्योपमानाऽनन्तरं शब्दं निरूपयति—आप्तेति। शब्द इति। शब्दप्रमाणमित्यर्थः। भ्रान्तविप्रलम्भकयोर्वाक्यस्य शब्दप्रमाणत्ववारणाय आप्तेति। ननु कोऽयमाप्त इत्यत आह—आप्तस्त्विति। यथाऽर्थवक्ता=यथा-भूताऽबाधिताऽर्थोपदेष्टा। वाक्यं लक्षयति—वाक्यमिति। घटादिसमूहवारणाय पदेति। शक्तमिति। निरूपकता-सम्बन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः। अस्मादिति। घटपदाद् घटरूपोऽर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छैव शक्तिरित्यर्थः। अर्थस्मृत्यनुकूल-पदार्थसम्बन्धत्वं तल्लक्षणम्। शक्तिरिव लक्षणाऽपि पदवृत्तिः। अथ केयं लक्षणा? शक्यसम्बन्धो लक्षणा। सा च त्रिधा—जहदजहज्जहदजहद्भेदात्। वर्तते च गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाहसम्बन्धस्तीरे। लक्षणाबीजं च तात्पर्या-ऽनुपपत्तिः। अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्याऽनुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति। छत्रिणो यान्ति इत्यादौ द्वितीया। सोऽयमश्व इत्यादौ तृतीया।

अनुवाद—अवसरसङ्गतिका अभिप्राय कर उपमान प्रमाणके अनन्तर शब्द प्रमाणका निरूपण करते हैं—आप्तेति। शब्द इति। शब्द=शब्दप्रमाण, यह तात्पर्य है। भ्रान्त (भ्रान्तियुक्त) और विप्रलम्भक(वञ्चक अर्थात् ठग)के वाक्यके शब्दप्रमाणत्वको निवारण करनेके लिए 'आप्त' पद दिया गया है। आप्त कौन है? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं—'आप्तस्त्विति'। यथाऽर्थवक्ता अर्थात् यथार्थ (सत्य) और अबाधित अर्थको उपदेश करनेवालेको 'आप्त' कहते हैं। वाक्यका लक्षण करते हैं—वाक्यमिति। 'समूहो वाक्यम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो घट आदिके समूहमें अतिव्याप्ति होगी। इसलिए उसे हटानेके लिए 'पद-समूह' पद दिया गया है। शक्तमिति। निरूपकता सम्बन्धसे शक्तिविशिष्टको 'शक्त' कहते हैं, यह तात्पर्य है। अस्मादिति। घट पदसे घटरूप अर्थ जानना चाहिए। ईश्वरकी ऐसी इच्छा ही 'शक्ति' है, यह तात्पर्य है। शक्तिका लक्षण करते हैं—अर्थस्मृतिके अनुकूल पद और पदार्थके सम्बन्धको 'शक्ति' कहते हैं।

लक्षणा भी शक्तिके समान पदमें रहनेवाली वृत्ति हैं। लक्षणा क्या है? ऐसे प्रश्नपर लक्षणाका लक्षण करते हैं—'शक्यसम्बन्धो लक्षणा।' शक्यसम्बन्धको 'लक्षणा' कहते हैं। विषयतासम्बन्धसे शक्तिके आश्रयको 'शक्य' कहते हैं। जैसे–गोपदका शक्य गोरूप अर्थ होता है। लक्षणाके तीन भेद होते हैं–जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा। जहाँ पर शक्य अर्थका सर्वथा परित्याग होता है, उसे 'जहल्लक्षणा' कहते हैं। जैसे कि—'गङ्गायां घोषः' अर्थात् गङ्गामें घोष (आभीरोंकी पल्ली) है। यहाँपर गङ्गापदका शक्य अर्थ है प्रवाह, उसका सम्बन्ध तीरमें है, अतः 'गङ्गायां घोषः' यहाँपर गङ्गापदका लक्ष्य अर्थ तीरमें होकर गङ्गाके तीरमें घोष (अहीरोंकी बस्ती) है, ऐसा अर्थ हुआ है।

लक्षणाका बीज (कारण) वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्ति है। अतएव 'गङ्गायां घोषः' कहनेपर गङ्गापदके शक्य अर्थ प्रवाहमें घोषके होनेमें तात्पर्यकी उपपत्ति न होनेसे गङ्गाके तीरमें लक्षणा सिद्ध हो जाती है। यहाँपर गङ्गापदका शक्य अर्थ प्रवाहका त्याग कर तीरमें लक्षणा होनेसे यह जहल्लक्षणाका उदाहरण है। गङ्गाका 'तट' यह लक्ष्य है।

'छत्रिणो यान्ति' (छातेवाले जाते हैं), यहाँपर दूसरी—अजहल्लक्षणा होती है।

जहाँपर शक्य अर्थका परित्याग न कर लक्ष्य अर्थकी प्रतीति होती है, उसे 'अजहल्लक्षणा' कहते हैं। जैसे—'छत्रिणो यान्ति' यहाँपर किन्हीं मनुष्योंका समुदाय जा रहा है, उनमें कुछ छत्री (छातेवाले) हैं और कुछ 'अच्छत्री' (बिना छाताके) जा रहे हैं, सो समुदायके तात्पर्यसे छत्रीके शक्यार्थ छातेवालोंके साथ छत्रीके लक्ष्य अर्थ अच्छत्रीयोंका भी बोध होता है।

'सोऽयमश्वः' (वही यह घोड़ा है) इत्यादि स्थलमें तीसरी (जहदजहल्लक्षणा) कहते हैं। जैसे—'सोऽयमश्वः' यहाँपर विप्रकृष्टत्वद्योतक सत्ताके अंशका अभी असंभव होनेसे त्याग कर सन्निकृष्टत्वद्योतक इदन्ताके अशका संभव होनेसे त्याग न कर अश्वव्यक्तिका बोध होनेसे जहदजहल्लक्षणा हुई है।

वाक्याऽर्थज्ञाने हेतवस्तेषां लक्षणानि च—

आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्याऽर्थज्ञाने हेतुः। पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्ताऽन्वयाऽननुभावकत्वमाकाङ्क्षा। अर्थाऽबाधो योग्यता। पदानामविलम्बेनोच्चारण सन्निधि तथा चाकाङ्क्षारहितं वाक्यमप्रमाणम्। यथा—गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम्, आकाङ्क्षा-

विरहात्। वह्निना सिञ्चतीति न प्रमाणं, योग्यताविरहात्। प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणं, सान्निध्याऽभावात्।

अनुवाद—वाक्यके अर्थज्ञानमें आकाङ्क्षा, योग्यता और सन्निधिके ज्ञान कारण है। पदका दूसरे पदके अभावसे जहाँ शाब्दबोधकी जनकता नहीं होती है, उसे 'आकाङ्क्षा' कहते हैं।

अर्थके अबाध(बाधके अभाव)को 'योग्यता' कहते हैं। पदोंके विलम्बके बिना उच्चारणको 'सन्निधि' कहते हैं।

आकाङ्क्षा, योग्यता और सन्निधिके ज्ञानसे रहित वाक्य अप्रमाण है। 'गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती' यह पदसमूह परस्पर आकाङ्क्षाके नहीं रहनेसे प्रमाण नहीं है।

'वह्निना सिञ्चति' (आगसे सींचता है) यह वाक्य भी योग्यताके न होनेसे प्रमाण नहीं है, क्योंकि आगमें सेचनकी योग्यता नहीं है। प्रहर-प्रहरमें एक साथ उच्चारण नहीं किये गये 'गाम् आनय' इत्यादि पद भी एक पदके दूसरे पदके साथ सान्निध्य(सामीप्य)के न होनेसे प्रमाण नहीं है।

पदस्येति। असम्भववारणाय पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त इति। पुनरसम्भववारणाय पदान्तरेति। अर्थेति। आकाङ्क्षावारणाय अर्थेति। पदानामिति। असहोच्चारितेषु अतिव्याप्तिवारणाय अविलम्बेनेति। आकाङ्क्षावारणाय पदानामिति। आकाङ्क्षादिशून्यवाक्यस्याऽत्र प्रमाणत्वं निषेधयति तथा चेति। आकाङ्क्षादिकं शाब्दहेतुरित्युक्ते चेत्यर्थः। अनाकाङ्क्षाद्युदाहरणं दर्शयति—यथेति।

अनुवाद—'पदस्य अन्वयाऽननुभावकत्वम्' आकाङ्क्षाका इतना ही लक्षण करेंगे तो असंभव होगा, उसे निवारण करनेके लिए 'पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त०' ऐसा लिखा, 'पदान्तर' पद नहीं देंगे तो फिर असम्भव होगा, इसलिए उसे हटानेके लिए 'पदान्तर' पद दिया। 'अबाधो योग्यता' ऐसा लक्षण करेंगे तो किसका अबाध? ऐसी आकाङ्क्षा बनी रहेगी, अतः उसे निवारण करनेके लिए 'अर्थ पद' दिया है। पदानामिति। साथ उच्चारण नहीं किये गये पदोंमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'अविलम्बेन' पद दिया है। सन्निधिके लक्षणमें 'अविलम्बेन उच्चारणम्' इतना ही लिखें तो किनका अविलम्बमें उच्चारण? ऐसी आकाङ्क्षा बनी रहेगी, उसकी निवृत्तिके लिए 'पदानाम्' (पदोंका) ऐसा पद दिया है। आकाङ्क्षाका आदिसे रहित वाक्यका यहाँपर प्रामाण्यका निषेध

करते हैं—'यथा च' इति । आकाङ्क्षा आदि शाब्दहेतु है, ऐसा कहनेपर यह तात्पर्य है । आकांक्षा, योग्यता और सन्निधिसे रहित पदसमूहोंका उदाहरण दिखलाते हैं—यथेति ।

वाक्यस्य द्वौ भेदौ—

वाक्यं द्विविधं—वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् ।

अनुवाद—वाक्यके दो भेद हैं—वैदिक और लौकिक । वैदिक वाक्य ईश्वर-से उक्त होनेसे सम्पूर्ण ही प्रमाण है । लौकिक वाक्य आप्त(यथार्थ वक्ता)से कहा गया हो तो प्रमाण है, अन्य (आप्तसे अकथित) प्रमाण नहीं है ।

शाब्दज्ञानस्वरूपम्—

वाक्याऽर्थज्ञानं शाब्दज्ञानम् । तत्करणं तु शब्दः ।

अनुवाद--वाक्यके अर्थज्ञानको 'शब्दज्ञान' कहते हैं । शाब्दज्ञानका करण (असाधारण कारण) शब्द होता है ।

ननु एतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता । प्रमाविभाजकवाक्ये शब्दस्याप्युद्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितम् ? इत्यत आह—वाक्याऽर्थेति । शाब्दत्वं च शाब्दात्प्रत्येमि इत्यनुभवसिद्धा जातिः । शाब्दबोधक्रमो यथा—चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यत्र ग्रामकर्मकगमनाऽनुकूलकृतिमांश्चैत्र इति शाब्दबोधः । द्वितीयायाः कर्मत्वम् अर्थः धातोर्गमनम्; अनुकूलश्च संसर्गमर्यादया भासते । लटो वर्तमानत्वम्, आख्यातस्य कृतिः, तत्सम्बन्धः संसर्गमर्यादया भासते । 'रथो गच्छती'त्यत्र गमनाऽनुकूलव्यापारवान् रथ इति शाब्दबोधः । 'स्नात्वा गच्छती'त्यत्र गमनप्रागभावाऽवच्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनाऽनुकूलवर्तमानकृतिमानिति शाब्दबोधः । क्त्वाप्रत्ययस्य कर्ता, पूर्वकालीनत्वं चाऽर्थः । एवमन्यत्राऽपि वाक्याऽर्थे बोधः ।

इति पदकृत्ये शब्दखण्डः ।

अनुवाद—इतने भागसे शब्दसामग्रीका प्रपञ्च किया । परन्तु प्रमा(यथार्थ ज्ञान)के विभाजक वाक्यमें शब्दज्ञानका भी उद्देश्य होनेसे उनका प्रदर्शन क्यों नहीं किया ? ऐसे प्रश्नका उत्तर देते हैं—वाक्याऽर्थेति । 'शब्दात् प्रत्येमि' 'शब्दसे प्रतीति (ज्ञान) करता हूँ' ऐसे अनुभवसे सिद्ध जातिको 'शाब्दत्व' कहते हैं । शाब्दबोधका क्रम जैसे—'चैत्रो ग्रामं गच्छति' (चैत्र गाँवको जाता है) यहाँपर ग्रामरूप कर्मवाले गमनकी अनुकूल वर्तमान कृति(प्रयत्न)वाला चैत्र, ऐसा शाब्दबोध होता है । 'ग्रामम्' यहाँपर द्वितीयाका कर्मत्व अर्थ है, गम धातुका अर्थ

गमन (उत्तरदेश-संयोगाऽनुकूल व्यापार) और अनुकूलत्व संसर्ग नामक सम्बन्धकी मर्यादासे प्रकाशित होता है। 'गच्छति' यहाँपर लट्-लकारका वर्तमानत्व, आख्यात (तिङन्त) पदका अर्थ कृति (प्रयत्न) और उसका सम्बन्ध संसर्ग-की मर्यादासे प्रकाशित होता है। 'रथो गच्छति' (रथ जाता है), यहाँपर गमनका अनुकूल व्यापारवाला रथ, ऐसा शाब्दबोध होता है। शाब्दबोधमें नैयायिक और वैयाकरणमें मतभेद है। नैयायिकके मतमें शाब्दबोधमें 'कर्ता' मुख्य विशेष्य होता है, जैसे कि पहले दिखा चुके हैं। वैयाकरणके मतके अनु-सार शाब्दबोधमें क्रिया मुख्य विशेष्य होती है। जैसा कि 'रथो गच्छति' यहाँ-पर 'रथनिष्ठगमनाऽनुकूलो व्यापारः' रथमें स्थित गमनका अनुकूल व्यापार, इस तरहका शाब्दबोध होता है। 'स्नात्वा गच्छति' (स्नान करके जाता है) यहाँ-पर 'गमनप्रागभावाऽवच्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनाऽनुकूलवर्तमानकृतिमान्' (गमनके प्रागभावसे युक्त कालमें होनेवाले स्नानका कर्ता) गमनकी अनुकूल जो वर्तमान कृति (प्रयत्न), उससे युक्त, ऐसा शाब्दबोध होता है। क्त्वा-प्रत्ययका कर्ता और पूर्वकालित्व (पूर्वकालमें होना), ऐसा अर्थ होता है। ऐसे ही और जगहमें भी वाक्यार्थ जानना चाहिए।

यह पदकृत्यमें शब्दखण्डका अनुवाद समाप्त हुआ।

अथाऽत्रशिष्टगुणनिरूपणम्—

अयथाऽर्थानुभवस्त्रिविधः—संशयविपर्ययतर्कभेदात्।

अनुवाद—अयथाऽर्थानुभव(अप्रमा)के तीन भेद हैं—संशय, विपर्यय और तर्क।

अयथाऽर्थाऽनुभवं विभजते—अयथार्थेति।

अनुवाद—अयथाऽर्थानुभवका विभाग करते हैं—अयथार्थेति।

संशयस्य लक्षणमुदाहरणं च—

एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्टयाऽवगाहि ज्ञानं संशयः। यथा—स्थाणुर्वा पुरुषो वेति।

अनुवाद—एकधर्मवाले विशेष्यमें विरुद्ध अनेक धर्मोंके वैशिष्टयका अव-गाहन करनेवाले ज्ञानको 'संशय' कहते हैं। जैसे—किसी वस्तुको दूरसे देखने पर यह स्थाणु (ठूँठा पेड़) है अथवा कोई पुरुष है, इस प्रकारका ज्ञान 'संशय' है।

संशयं लक्षयति—एकेति। एकस्मिन् धर्मिणि=एकस्मिन्नेव पुरोवर्तिनि

पदार्थे, विरुद्धाः=व्यधिकरणा, ये नानाधर्माः=स्थाणुत्वपुरुषत्वादयः, तेषां वैशिष्ट्यं=सम्बन्धः, तदवगाहि ज्ञानं संशय इत्यर्थः। घटपटाविति समूहालम्बनज्ञानस्य घटत्वपटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्याऽवगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय एकस्मिन्निति। घटः पृथिवीति ज्ञानस्य एकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्वरूपनानाधर्मवैशिष्ट्याऽवगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय विरुद्धेति। पटत्वविरुद्धघटत्ववान्घट इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय नानेति।

अनुवाद—संशयका लक्षण करते हैं—एकेति। एकधर्मीमें=एक ही पुरोवर्ती पदार्थमें, विरुद्ध=विभिन्न आधारवाले, जो अनेक धर्म=स्थाणुत्व, पुरुषत्व आदि, उनका वैशिष्टय=सम्बन्ध, उसका अवगाहन करनेवाले ज्ञानको 'संशय' कहते हैं, यह तात्पर्य है। 'घटपटौ' (घट और पट) समूहालम्बन ज्ञानमें घटत्व और पटत्व ऐसे विरुद्ध अनेक धर्मोंके सम्बन्धका अवगाहन होनेसे अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'एकस्मिन्' ऐसा कहा। अर्थात् एकधर्मीमें 'घटपटौ' यहाँपर धर्मी एक नहीं, दो हैं। 'घटः पृथ्वी' इस ज्ञानका एकधर्मी घटमें घटत्व और पृथिवीत्व ऐसे अनेक धर्मोंके सम्बन्धका अवगाहन होनेसे अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'विरुद्ध' पद दिया है। 'घटः पृथिवी' कहनेसे घटरूप धर्मीमें घटत्वके साथ पृथ्वीत्व धर्म भी रहता है, अतः घटत्व और पटत्व जैसे विरुद्ध धर्म हैं, वैसे घटत्व और पृथिवीत्व विरुद्ध धर्म नहीं हैं, इसलिए दोष नहीं है। 'पटत्वविरुद्धघटत्ववान् घटः' अर्थात्–पटत्वके विरुद्ध घटत्वधर्मवाला घट है, इस ज्ञानमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'नाना' पद दिया है। यहाँ वस्तुतः घटत्व एक ही धर्म है, नाना धर्म नहीं है, इसलिए संशयके लक्षणमें अतिव्याप्ति नहीं है।

विपर्ययस्य लक्षणमुदाहरणं च—

मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा - शुक्तौ 'रजतम्' इति।

अनुवाद—विपर्ययका लक्षण करते हैं—'मिथ्याज्ञानं विपर्ययः'। अर्थात् मिथ्या ज्ञानको 'विपर्यय' कहते हैं, जैसे—शुक्ति(सीप)में रजत(चाँदी)-का ज्ञान।

यथार्थज्ञानवारणाय—मिथ्येति। अयथार्थवारणाय ज्ञानेति।

अनुवाद—'ज्ञानं विपर्ययः' अर्थात् ज्ञान विपर्यय है, ऐसा कहेंगे तो यथार्थज्ञानमें अतिव्याप्ति होगी, इसलिए उसे हटानेके लिए 'मिथ्या' पद दिया है। अयथार्थस्मृतिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'ज्ञान' पद दिया है। विपर्ययको 'भ्रम' भी कहते हैं।

तर्कस्य लक्षणमुदाहरणं च—

व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा—'यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यात्' इति।

अनुवाद—तर्कका लक्षण करते हैं—व्याप्यारोपेणेति। अर्थात् व्याप्यके आरोप(आहार्यज्ञान)से व्यापकके आरोपको 'तर्क' कहते हैं। जैसे—'यदि वह्नि नहीं होगा तो धूम भी नहीं होगा' यहाँपर व्याप्यारोप(वह्न्यभाव)-से व्यापकारोप(धूमाभाव)के होनेसे यह तर्कका उदाहरण है।

व्याप्येति। असम्भववारणाय व्याप्यारोपेणेति। पुनरसम्भववारणाय व्यापकारोप इति। अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः, धूमाऽभावो व्यापकः। यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभागोऽनुचितः, तथाऽपि प्रमाणाऽनुग्राहकत्वात्स उदित इति बोध्यम्। स्वप्नस्तु पुरीतद्बहिर्देशाऽन्तरदेशयोः सन्धाविडानाड्यां वा मनसि स्थितेऽदृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जन्यते, स च मानसविपर्ययाऽन्तर्भूतः।

अनुवाद—व्याप्येति। तर्कके लक्षणमें असम्भवका निवारण करनेके लिए 'व्याप्यारोपेण' यह पद दिया है। फिर असम्भवको हटानेके लिए 'व्यापकारोपः' ऐसा पद दिया है, 'यदि वह्नि नहीं होगा तो धूम भी नहीं होगा' यहाँपर वह्न्यभाव व्याप्य है और धूमाऽभाव व्यापक है। धूमाऽभाव अयोगोलकमें भी है किन्तु वह्न्यभाव नहीं है, इसलिए यहाँपर अधिक देशमें रहनेसे धूमाऽभाव व्यापक है। अल्प देशमें रहनेसे वह्न्यभाव व्याप्य है। यद्यपि विपर्ययस्वरूप होनेसे तर्कका पृथक् विभाग अनुचित है, तथापि प्रमाणोंका अनुग्राहक होनेसे इस प्रकारसे कहा गया है, यह जानना चाहिए। स्वप्न तो पुरीतत नाडीके बाहर और भीतरके स्थानोंकी सन्धिमें वा इडा नामकी नाडीमें मनके रहनेपर अदृष्ट (धर्माऽधर्म) विशेषसे अथवा धातुदोषसे उत्पन्न होता है और वह मन-के विपर्ययमें अन्तर्भूत होता है।

स्मृतेर्भेदौ—

स्मृतिरपि द्विविधा—यथार्था अयथार्था चेति। प्रमाजन्या यथार्था, अप्रमाजन्या अयथार्था।

अनुवाद—स्मृतिके भी दो भेद हैं—यथार्थस्मृति और अयथार्थस्मृति। स्मृतिका लक्षण पहले ही लिख चुके हैं। प्रमासे उत्पन्न स्मृति यथार्थ और अप्रमासे उत्पन्न अयथार्थ है।

सुखस्य लक्षणम्—

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ।

अनुवाद—सुखका लक्षण करते हैं—'सर्वेषामनुकूलवेदनीयत्वं सुखत्वम्'। अर्थात् जो सभीके अनुकूल ज्ञानका विषय है, उसे 'सुख' कहते हैं ।

सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । सर्वात्मनामनुकूलमिति वेद्यं यत्तत्सुखमित्यर्थः । अहं सुखीत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमत्, धर्ममात्राऽसाधारणकारणगुणो वा सुखम् । शत्रुदुःखवारणाय सर्वेषामिति ।

अनुवाद—सुखका निरूपण करते हैं—सर्वेषामिति । सुखका लक्षण करते हैं—सब आत्माओंको जो अनुकूल रूपसे वेद्य अर्थात् ज्ञानका विषय है, वह सुख है, यह तात्पर्य है; अथवा 'अहं सुखी' (मैं सुखी हूँ) ऐसी अनुभवसिद्धि जातिके आधारको वा धर्ममात्र जिसका असाधारण कारण है, ऐसे गुणविशेषको 'सुख' कहते हैं ।

शत्रुदुःख भी अनुकूल वेदनीय है, अतः उसमें सुखलक्षणकी अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'सर्वेषाम्' यह पद दिया है ।

दुःखस्य लक्षणम्—

(सर्वेषाम्) प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ।

अनुवाद—दुःखका लक्षण करते हैं— (सर्वेषाम्) 'प्रतिकूलवेदनीयत्वं दुःखत्वम्' अर्थात् जो सभीके प्रतिकूल ज्ञानका विषय है, उसे 'दुःख' कहते हैं ।

दुःखं निरूपयति—दुःखत्वजातिमत्, अधर्ममात्राऽसाधारणकारणो गुणो वा दुःखम् । शेषं पूर्ववत् ।

अनुवाद—दुःखका निरूपण करते हैं । 'अहं दुःखी' (मैं दुःखी हूँ), ऐसी अनुभवसिद्धि दुःखत्वजाति जिसमें है, उसे 'दुःख' कहते हैं, अथवा अधर्ममात्र जिसका असाधारण कारण है, ऐसे गुणविशेषको 'दुःख' कहते हैं । बाकी पहले-(सुख)के समान जानना चाहिये । अर्थात् शत्रुसुख भी प्रतिकूलवेदनीय है, अतः उसमें दुःखलक्षणकी अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'सर्वेषाम्' पद देना चाहिए ।

इच्छा-द्वेष-प्रयत्नानां लक्षणानि—

इच्छा कामः । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः ।

अनुवाद—कामनाको 'इच्छा', क्रोधको 'द्वेष और कृतिको 'प्रयत्न' कहते हैं ।

इच्छां निरूपयति—इच्छेति । काम इति पर्यायः । इच्छात्वजातिमती इच्छा । सा द्विधा—फलेच्छा उपायेच्छा च । फलं सुखादिकम्, उपायो यागादिः । क्रोध

इति। 'द्वेष्टि' इत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान् द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः। कृतिरिति। प्रयत्नत्वजातिमान्प्रयत्नः। स त्रिविधः—प्रवृत्ति-निवृत्ति-जीवन-योनिभेदात्। इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः। द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः। जीवनाऽदृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः। स च प्राणसञ्चारकारणम्।

अनुवाद—इच्छाका निरूपण करते हैं—इच्छेति। 'काम' भी इच्छाका पर्याय शब्द है। इच्छाका लक्षण करते हैं–इच्छात्व जाति जिसमें रहती है, उसे 'इच्छा' कहते हैं। वह (इच्छा) दो प्रकारकी है—फलेच्छा और उपायेच्छा। सुख आदि फल और याग आदि उपाय हैं। अर्थात् इच्छाका कार्य सुख आदि फल हैं, उसकी प्राप्तिका हेतु 'उपाय' है। द्वेषका निरूपण करते हैं–क्रोध इति। द्वेषका लक्षण करते हैं—'द्वेष्टि' (द्वेष करता है), ऐसी अनुभवसिद्ध द्वेषत्वजाति जिसमें है, उसे वा द्विष्टसाधनताके ज्ञानसे उत्पन्न गुणको 'द्वेष' कहते हैं। प्रयत्नका लक्षण करते हैं—कृतिरिति। प्रयत्नत्व जातिके आश्रयको 'प्रयत्न' कहते हैं। प्रयत्नके तीन भेद होते हैं—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। प्रवृत्तिका लक्षण करते हैं—'इच्छाजन्यत्वे सति गुणत्वं प्रवृत्तित्वम्' अर्थात् इच्छासे उत्पन्न गुणविशेषको 'प्रवृत्ति' कहते हैं। निवृत्तिका लक्षण करते हैं—'द्वेषजन्यत्वे सति गुणत्वं निवृत्तित्वम्' अर्थात् द्वेषसे उत्पन्न गुणविशेषको 'निवृत्ति' कहते हैं। जीवनयोनिका लक्षण करते हैं—जीवनेति। अर्थात् जीवनके अदृष्ट(धर्म और अधर्म)से उत्पन्न गुणविशेषको 'जीवनयोनि' कहते हैं। वह प्राणोंके संचारका कारण है।

धर्माऽधर्मयोर्लक्षणे—

विहितकर्मजन्यो धर्मः। निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः।

अनुवाद—धर्मका लक्षण करते हैं—'विहितकर्मजन्यत्वे सति गुणत्वं धर्मत्वम्।' अर्थात् वेदविहित कर्मसे उत्पन्न गुणविशेषको 'धर्म' कहते हैं। अधर्मका लक्षण करते हैं—'निषिद्धकर्मजन्यत्वे सति गुणत्वमधर्मत्वम्'। अर्थात् वेदसे निषिद्ध कर्मसे उत्पन्न गुणविशेषको 'अधर्म' कहते हैं।

धर्ममाह—'विहितेति'। वेदविहितेत्यर्थः। अधर्मवारणाय वेदविहितेति। यागादिक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तनभोगतत्त्वज्ञानादिना नश्यति। अधर्मलक्षणमाह—निषिद्धेति। वेदेनेत्यर्थः। धर्मवारणाय वेदनिषिद्धेति। वेदनिषिद्धक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च भोगप्रायश्चित्ता-

दिना नश्यति। एतावेव अदृष्टमिति कथ्येते वासनाजन्यौ च। वासना च विलक्षणसंस्कारः।

अनुवाद—धर्मका लक्षण करते हैं—विहित इति। विहितका अर्थ है वेद-विहित। 'कर्मजन्यो धर्मः' इतना ही लक्षण करेंगे तो कर्मजन्य अधर्ममें अति-व्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'वेदविहित' पद दिया गया है। 'विहितो धर्मः' ऐसा लक्षण करेंगे तो यागादि क्रियामें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'कर्मजन्य' पद दिया है। वह धर्म कर्मनाशा नामकी नदीके जलका स्पर्श, कीर्तन, भोग और तत्त्वज्ञान आदिसे नष्ट होता है। अधर्मका लक्षण करते हैं—निषिद्धेति। वेदसे निषिद्ध कर्मसे उत्पन्न गुणविशेषको 'अधर्म' कहते हैं। 'कर्म-जन्यः अधर्मः' ऐसा लक्षण करेंगे तो धर्ममें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'वेदनिषिद्ध' ऐसा पद दिया है। वेदनिषिद्ध क्रियामें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'कर्मजन्यः' ऐसा पद दिया है। वह अधर्म भोग प्रायश्चित्त आदिसे नष्ट होता है। धर्म और अधर्मको 'अदृष्ट' पदसे भी व्यवहार करते हैं और ये वासनासे भी उत्पन्न होते हैं। विलक्षण संस्कारको 'वासना कहते हैं।

आत्ममात्रविशेषगुणाः—

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः। बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य, अनित्या जीवस्य।

अनुवाद—बुद्धि आदि अर्थात् बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म—ये आठ गुण केवल आत्मामें रहनेवाले विशेष गुण हैं। उनमें बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न—ये तीन गुण नित्य और अनित्य हैं। अर्थात् ये तीन गुण ईश्वरके नित्य हैं और जीवके (ये तीनों गुण) अनित्य हैं।

संस्कारभेदाः—

संस्कारस्त्रिविधो—वेगो, भावना स्थितिस्थापकश्चेति। वेगः पृथि-व्यादि चतुष्टयमनोवृत्तिः। अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना, आत्ममात्र-वृत्तिः। अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थाऽऽपादकः स्थितिस्थापकः, कटादि-पृथिवीवृत्तिः।

अनुवाद—संस्कारके तीन भेद हैं–वेग, भावना और स्थितिस्थापक। उनमें वेग नामका संस्कार, पृथिवी आदि चार (पृथिवी, जल, तेज और वायु) तथा मनमें रहता है। भावनाका लक्षण करते हैं—'अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वं भावनात्वम्' अर्थात् अनुभवसे उत्पन्न होकर जो स्मृतिका कारण है, उसे भावना

कहते हैं। वह केवल आत्मामें रहती है। स्थितिस्थापक नामके संस्कारका लक्षण करते हैं—'अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापदकत्वं स्थितिस्थापकत्वम्' अर्थात् अन्य अवस्थाको प्राप्त पदार्थको फिर उसी (पहलेकी) स्थितिमें प्राप्त करानेवाले गुणविशेषको 'स्थितिस्थापक' कहते हैं। वह कट (चटाई) आदि पृथिवीमें रहते हैं।

संस्कारं विभजते—संस्कारेति। सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तित्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः। घटादिवारणाय गुणत्वव्याप्येति। संयोगादिवारणाय आत्मविशेषगुणोभयवृत्तीति। ज्ञानादिवारणाय सामान्येति। द्वितीयादिपतनाऽसमवायिकारण वेगः। रूपादिवारणाय द्वितीयादिपतनेति। कालादिवारणाय असमवायीति। भावनां लक्षयति—अनुभवेति। आत्मादिवारणाय प्रथमदलम्। अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम्। स्थितिस्थापकमाह—अन्यथेति। पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम्। गन्धवत्त्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वव्याप्येति। भावनात्वमादाय भावनावारणाय पृथिवीसमवेतेति। स्थितिस्थापकरूपाऽन्यतरत्वमादाय रूपवारणाय जातीति। इति गुणा इति। द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान्गुणः। द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम्। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्।

अनुवाद—संस्कारका विभाग करते हैं—संस्कारेति। संस्कारका लक्षण करते हैं—'सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वं संस्कारत्वम्' अर्थात् सामान्यगुण और आत्मामें रहनेवाला विशेषगुण, इन दोनोंमें रहनेवाली गुणत्वव्याप्य (गुणत्वकी व्याप्तिका आश्रय) जाति जहाँ रहती है, उसे संस्कार' कहते हैं। सामान्यगुण और विशेषगुण उभयगुणवृत्ति जातिके आश्रय घटमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'गुणत्वव्याप्य' पद दिया है। घट आदि गुणत्वजातिकी व्याप्तिका आश्रय नहीं हैं। संयोगत्व सामान्यगुणके आश्रय संयोग आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'आत्मविशेषगुणोभयवृत्ति' पद दिया है। संयोग आदि आत्माका विशेष गुण नहीं है। ज्ञान आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'सामान्य' पद दिया है। ज्ञान आदि सामान्यगुण नहीं हैं, विशेषगुण हैं। वेगका लक्षण करते हैं—'द्वितीयादिपतनाऽसमवायिकारणत्वे सति गुणत्वं वेगत्वम्' अर्थात् द्वितीय आदि पतनके असमवायिकारण गुणको 'वेग' कहते हैं। आद्य (पहले वारके) पतनके असमवायिकारण गुणको 'गुरुत्व' कहते हैं। 'असमवायिकारणं वेगः' ऐसा लक्षण करेंगे तो रूप आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'द्वितीयादिपतन' पद दिया है। द्वितीय आदिपतनका

असमवायिकारण रूप आदि नहीं है । 'द्वितीयादिपतनकारणत्वम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो काल आदिमें अतिव्याप्ति होगी । अतः उसे हटानेके लिए 'असमवायि' पद दिया । काल आदि कार्यमात्रके साधारण कारण हैं, असमवायिकारण नहीं । भावनाका लक्षण करते हैं—अनुभवेति । भावनाका 'स्मृतिहेतुः' इतना ही लक्षण करेंगे तो आत्मा भी स्मृतिका कारण है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए प्रथम दल 'अनुभवजन्य' दिया । आत्मा अनुभवसे जन्य नहीं है । अब भावनाका 'अनुभवजन्य' इतना ही लक्षण करेंगे तो अनुभवध्वंस भी अनुभवसे जन्य (उत्पन्न) है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'स्मृतिहेतुः' ऐसा दूसरा दल दिया है । अनुभवध्वंस स्मृतिका कारण नहीं है ।

स्थितिस्थापकको कहते हैं—अन्यथेति । स्थितिस्थापकका लक्षण करते हैं—'पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम्' अर्थात् पृथिवीमात्रमें समवेत (समवायसम्बन्धसे वर्तमान) संस्कारत्वव्याप्य जाति जिसमें रहती है, उसे 'स्थितिस्थापक' कहते हैं । 'पृथिवीमात्रसमवेतजातिमत्त्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो पृथिवीमात्रमें समवेत (समवाय सम्बन्धसे रहनेवाली) जो गन्धत्वजाति, उसका आश्रय गन्ध है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संस्कारत्वव्याप्य' पद दिया गया है । संस्कारत्वव्याप्य जातिका आश्रय गन्ध नहीं है, प्रत्युत स्थितिस्थापक है, अतः अतिव्याप्ति नहीं होगी । स्थितिस्थापकका 'संस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो संस्कारत्वव्याप्य जाति हुई भावनात्व, उसकी आश्रय भावनामें अतिव्याप्ति होगी । उसे हटानेके लिए 'पृथिवीसमवेत' ऐसा पद दिया गया है । भावना पृथिवीसमवेत नहीं है, वह आत्मामें समवायसम्बन्धसे रहती है । 'पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यत्वम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो पृथिवीमात्रमें समवायसम्बन्धसे रहनेवाला संस्कारत्वजातिकी व्याप्तिका विषय स्थितिस्थापकके साथ रूप भी होगा, उनमें अन्यतर(दोनोंमेंसे एक)-रूपमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'जाति' पद दिया है । संस्कारत्वजातिका आश्रय रूप नहीं है, अतः अतिव्याप्ति नहीं है । इति गुणा इति । गुणका लक्षण करते हैं—'द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वं गुणत्वम्' अर्थात् द्रव्य और कर्मसे भिन्न होकर जिसमें सामान्य (जाति) रहती है, उसे 'गुण' कहते हैं, 'सति' अन्तमें होनेवाला पद 'विशेषण' होता है, द्रव्य और कर्मसे अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'द्रव्यकर्मभिन्न' ऐसा विशेषण दल दिया है । 'द्रव्यकर्मभिन्नत्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो सामान्य(जाति)में अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि वह भी द्रव्य और कर्मसे

भिन्न है, इसलिए 'सामान्यवान्' ऐसा विशेष्य दल दिया, सामान्यमें सामान्य ही नहीं रहता है, इसलिए अतिव्याप्ति है ।

इति गुणनिरूपणम् ।

कर्मणो लक्षणं भेदाश्च—

चलनात्मकं कर्म । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य सन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् । विप्रकृष्टसंयोगहेतु प्रसारणम् । अन्यत्सर्वं गमनम् ।

अनुवाद—कर्मका लक्षण करते हैं—चलनस्वरूपवाली क्रियाको 'कर्म' कहते हैं । उसके पाँच भेद होते हैं, वे सब पहले ही बताये गये हैं । उनका क्रमसे लक्षण करते हैं—ऊर्ध्वदेशमें संयोगके कारणको 'उत्क्षेपण' कहते हैं । अधोदेशमें संयोगके कारणको 'अपक्षेपण' कहते हैं । शरीरके निकट संयोगके कारणको 'आकुञ्चन' कहते हैं । शरीरके दूरसंयोगके कारणको 'प्रसारण' कहते हैं । इनके अतिरिक्त सब क्रियाका अन्तर्भाव 'गमन'में होता है ।

टिप्पणी—गमनका लक्षण है—'उत्तरदेशसंयोगाऽनुकूलव्यापारत्वं गमनत्वम्' अर्थात् उत्तर देशमें संयोगके अनुकूल व्यापारको 'गमन' कहते हैं ।

चलनेति । संयोगभिन्नत्वे सति संयोगाऽसमवायिकारणं कर्म । हस्तपुस्तकसंयोगवारणाय सत्यन्तम् । घटादिवारणाय विशेष्यदलम् । ऊर्ध्वेति । अपक्षेपणवारणाय ऊर्ध्वेति । कालादिवारणाय 'असाधारण' इत्यपि देयम् । उत्क्षेपणवारणाय 'अधोदेश' इति । कालादिवारणाय 'असाधारण' इत्यपि देयम् । प्रसारणादिवारणाय शरीरसन्निकृष्ट इति । कालादिवारणाय 'असाधारण' इत्यपि देयम् । उत्क्षेपणादिवारणाय 'विप्रकृष्ट' इति । कालादिवारणाय 'असाधारणम्' इत्यप्यावश्यकम् ।

अनुवाद—कर्मका लक्षण करते हैं—संयोगसे भिन्न होकर जो संयोगका असमवायिकारण है, उसे 'कर्म' कहते हैं । 'संयोगाऽसमवायिकारणं कर्म' इतना ही लक्षण करेंगे तो हाथ और पुस्तकका संयोग भी असमवायिकारण है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'संयोगभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण दल दिया है । अब 'संयोगभिन्नत्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो संयोगसे भिन्न घट आदि भी है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संयोगाऽसमवायिकारणम्' ऐसा विशेष्य दल दिया है । ऊर्ध्वेति । 'संयोगहेतुः उत्क्षेपणम्' ऐसा लक्षण करेंगे तो संयोगका हेतु अपक्षेपण भी है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, अतः

उसे हटानेके लिए 'ऊर्ध्वदेश' पद दिया है। ऊर्ध्वदेशके संयोगके हेतु कार्यमात्रके साधारण कारण काल आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'ऊर्ध्वदेशसंयोगाऽसाधारणकारणम्' ऐसा लक्षण करना चाहिए। 'संयोगहेतुः' इतना लक्षण करेंगे तो संयोगका हेतु उत्क्षेपण भी हैं, उसमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'अधोदेश' ऐसा लिखा गया है। 'अधोदेशके संयोगहेतु कार्यमात्रका साधारण कारण काल आदि भी है, उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद देना चाहिए अर्थात् अपक्षेपणका लक्षण 'अधोदेशसंयोगाऽसाधारणकारणम् अपक्षेपणम्' ऐसा करना चाहिए। आकुञ्चनके लक्षणमें प्रसारण आदिकी अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'शरीरसन्निकृष्ट' पद देना चाहिए। इतने पर भी कार्यमात्रके साधारण कारण काल आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'शरीरसन्निकृष्टसंयोगाऽसाधारणकारणम् आकुञ्चनम्' ऐसा लक्षण करना चाहिए। प्रसारणके लक्षणमें 'संयोगहेतुः' इतना ही लिखेंगे तो उत्क्षेपण आदिमें अतिव्याप्ति होगी। अतः उसे हटानेके लिए 'विप्रकृष्ट' पद देना चाहिए। इतने पर भी कार्यमात्रके साधारण कारण काल आदिमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'असाधारण' पद आवश्यक है। अर्थात् 'शरीरविप्रकृष्टसंयोगाऽसाधारणकारणं प्रसारणम्' ऐसा लक्षण करना चाहिए।

सामान्यस्य लक्षणं तस्य भेदौ च—

नित्यमेकमनेकाऽनुगतं सामान्यम्। द्रव्यगुणकर्मवृत्तिः। तद् द्विविधं—पराऽपरभेदात्। परं सत्ता, अपरं द्रव्यत्वादिः।

अनुवाद—सामान्य(जाति)का लक्षण करते हैं—जो नित्य और एक होकर अनेकोंमें अनुगत हैं, उसे 'सामान्य' कहते हैं। वह (सामान्य) द्रव्य, गुण और कर्ममें रहता है। सामान्यके दो भेद हैं—पर और अपर। द्रव्य, गुण और कर्ममें रहनेवाले सामान्य(जाति)को सत्ता कहते हैं। अधिक देशमें रहनेसे उसे 'पर सामान्य' कहते हैं। अल्पदेशमें रहनेवाला द्रव्यत्व आदि 'अपर 'सामान्य' कहलाता है।

नित्यमिति। **संयोगादिवारणाय नित्यमिति। कालादिपरिमाणवारणाय अनेकेति। अनेकाऽनुगतत्वं च समवायेन बोध्यम्। तेन नाऽत्यन्ताऽभावेऽतिव्याप्तिः।**

अनुवाद—नित्यमिति। सामान्यका लक्षण 'एकम् अनेकाऽनुगतम्' इतना ही करेंगे तो संयोग भी एक और अनेकोंमें अनुगत है, अतः उसमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'नित्यम्' पद दिया। संयोग अनित्य है, इसलिए अतिव्याप्ति नहीं है। 'नित्यम् एकम्' इतना लक्षण करेंगे तो काल आदिका

परिमाण भी नित्य और एक है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'अनेक' पद दिया। अनेकाऽनुगतत्व समवायसम्बन्धसे जानना चाहिए, इस कारणसे स्वरूप-सम्बन्धसे अनेकमें अनुगत अत्यन्ताऽभावमें अतिव्याप्ति नहीं होती है।

विशेषलक्षणम्—

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः।

अनुवाद—नित्यद्रव्यमें रहनेवाले व्यावर्तकोंको 'विशेष' कहते हैं।

नित्येति। घटत्वादिवारणाय नित्यद्रव्यवृत्तय इति। आत्मत्वमनस्त्ववारणाय आत्मत्वमनस्त्वभिन्ना इत्यपि बोध्यम्।

अनुवाद—नित्येति। विशेषका 'व्यावर्तकत्वम्' इतना ही लक्षण करेंगे तो पटत्व आदिका व्यावर्तक होनेसे घटत्व आदिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए 'नित्यद्रव्यवृत्तयः' ऐसा पद दिया है। घटत्व नित्यद्रव्यमें नहीं रहता है। 'नित्यद्रव्य' आत्मामें और मनमें रहनेसे आत्मत्व और मनस्त्वमें विशेषके लक्षणकी अतिव्याप्ति होनेसे उसे हटानेके लिए पूर्वोक्त लक्षणमें 'आत्मत्वमनस्त्वभिन्नाः' इस पदका भी सन्निवेश करना चाहिए।

टिप्पणी—पृथिवी, जल, तेज और वायुके परमाणु और आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन इन नित्यद्रव्योंमें रहनेवाले व्यावर्तक 'विशेष' अनन्त हैं।

समवायलक्षणम्—

नित्यसम्बन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः। ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवाऽवतिष्ठते तावयुतसिद्धौ। यथा—अवयवाऽवयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्ये चेति।

अनुवाद—नित्यसम्बन्धको 'समवाय' कहते हैं, वह अयुतसिद्ध पदार्थोंमें रहता है। जिन दोनोंके मध्यमें एक अवस्था नष्ट न होनेतक दूसरेके आश्रित रहता है, वैसे दोनों पदार्थ 'अयुतसिद्ध' कहे जाते हैं. जैसे—अवयव और अवयवी, गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान्, जाति और व्यक्ति तथा विशेष और नित्यद्रव्य।

नित्येति। आकाशादिवारणाय सम्बन्ध इति। संयोगवारणाय नित्येति। स्वरूपसम्बन्धवारणाय तद्भिन्न इत्यपि बोध्यम्।

अनुवाद—नित्येति। समवायका लक्षण केवल 'नित्यः' करेंगे तो आकाश भी नित्य है, उसमें अतिव्याप्ति होगी, उसे हटानेके लिए 'सम्बन्ध' पद दिया है। केवल 'सम्बन्धः' ऐसा लक्षण करेंगे तो अनित्यसम्बन्ध संयोगमें अतिव्याप्ति होगी,

अतः उसका निवारण करनेके लिए 'नित्य' पद दिया है। इतनेपर भी स्वरूप-सम्बन्धमें अतिव्याप्ति होगी, अतः उसे हटानेके लिए लक्षणमें 'स्वरूपसम्बन्ध-भिन्नत्वे सति नित्यसम्बन्धत्वं समवायत्वम्' ऐसा लक्षण करना चाहिए।

प्रागभावस्य लक्षणम्--

अनादिः साऽन्तः प्रागभावः। उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य।

अनुवाद—जिसका आदि नहीं और अन्त है, ऐसे अभावको 'प्रागभाव' कहते हैं। वह कार्यकी उत्पत्तिके पहले रहता है।

प्रागभावं लक्षयति— अनादिरिति। **घटादिवारणाय प्रथमदलम्। परमाणुवारणाय द्वितीयदलम्। पुनः प्रागभावः** कस्मिन् कालेऽस्ति इत्यत आह—उत्पत्तेरिति। **कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियोगिसमवायिकारणे वर्तत इत्यर्थः।**

अनुवाद—प्रागभावका लक्षण करते हैं— अनादिरिति। प्रागभावका केवल 'साऽन्तः' (अन्तवाला) ऐसा लक्षण करेंगे तो घट आदिमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि घट आदि भी साऽन्त (अन्तवाला) है, उसे हटानेके लिए 'अनादिः' ऐसा पहला दल दिया। घट आदि अनादि नहीं है, साऽऽदि हैं। अब केवल 'अनादिः' ऐसा लक्षण करेंगे तो परमाणुमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि परमाणुका आदि नहीं, अतः उसे हटानेके लिए 'सान्तः' ऐसा दूसरा दल दिया। परमाणुका अन्त (नाश) नहीं होनेसे अतिव्याप्ति नहीं है। फिर प्रागभाव किस कालमें होता है? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं—उत्पत्तेरिति। घट आदि कार्यकी उत्पत्तिके पहले स्व=प्रागभाव, वह अपने प्रतियोगी (कार्य)के समवायिकारण कपाल आदिमें रहता है, यह तात्पर्य है।

प्रध्वंसाऽभावस्य लक्षणम्--

सादिरनन्तः प्रध्वंसः, उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य।

अनुवाद—जिसका आदि है (जो उत्पन्न है) और अन्त (नाश) नहीं है, वह प्रध्वंसाऽभाव है, वह कार्यकी उत्पत्तिके बाद होता है।

ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति। **घटादिवारणाय अनन्त इति। आत्माऽऽदिवारणाय सादिरिति। उत्पत्तीति। कार्यस्य उत्पत्त्यनन्तरं स्वप्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिरित्यर्थः। स च 'ध्वस्त' इति प्रत्ययविषयः।**

अनुवाद— ध्वंसका लक्षण करते हैं— सादिरिति। साऽऽदि इतना ही लक्षण करें तो घटमें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि घट आदिवाला है, अर्थात् घटकी उत्पत्ति होती है, अतः 'अनन्तः' कहा, घटका अन्त अर्थात् नाश होता है, अतः

अतिव्याप्ति नहीं होती है। अब 'अनन्तः' इतना ही कहें तो आत्मामें अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि आत्माका अन्त (नाश) नहीं होता है, इसलिए 'सादिः' कहा है। आत्माका आदि नहीं अर्थात् उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसलिए अतिव्याप्ति नहीं है। उत्पत्तीति। कार्यकी उत्पत्तिके अनन्तर स्वप्रतियोगीसमवायिकारणवृत्ति अर्थात् स्वपदका अर्थ हुआ ध्वंस, उसका प्रतियोगी 'यस्याऽभावः स प्रतियोगी = जिसका अभाव है, वह प्रतियोगी है' इसके अनुसार घट हुआ, उसके समवायिकारण कपालमें प्रध्वंस रहता है और वह 'ध्वस्त' ऐसे ज्ञानका विषय है।

अत्यन्ताऽभावस्य लक्षणमुदाहरणं च—

त्रैकालिकसंसर्गाऽवच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावोऽत्यन्ताऽभावः। यथा—भूतले घटो नाऽस्तीति।

अनुवाद—अत्यन्ताऽभावका लक्षण करते हैं—त्रैकालिक (भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीन कालोंमें होनेवाले) और संसर्गसे युक्त प्रतियोगिता जिसमें है, उस अभावको 'अत्यन्ताऽभाव' कहते हैं, जैसे—'भूतले घटो नाऽस्ति' (भूतलमें घड़ा नहीं है), यहाँपर भूतलमें घड़ेका अत्यन्ताभाव है।

अत्यन्ताऽभावं लक्षयति—त्रैकालिकेति। त्रैकालिकत्वे सति संसर्गाऽवच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताऽभावः। ध्वंसप्रागभाववारणाय—त्रैकालिकेति। भेदवारणाय संसर्गेत्यादि।

अनुवाद—अत्यन्ताऽभावका लक्षण करते हैं—त्रैकालिकेति। त्रैकालिक (भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालमें होनेवाला) होकर संसर्ग(सम्बन्ध)से युक्त प्रतियोगितावाले अभावको 'अत्यन्ताऽभाव' कहते हैं। 'संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकः' इतना ही लक्षण करें तो ध्वंस और प्रागभावमें अतिव्याप्ति होगी (क्योंकि ध्वंस और प्रागभावकी प्रतियोगिता संसर्गाऽवच्छिन्ना है, त्रैकालिक नहीं होती है), इसलिए उसे हटानेके लिए 'त्रैकालिक' कहा गया है। भेद(अन्योन्याऽभाव)में अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'संसर्ग' पद दिया गया है। यहाँ 'संसर्ग' पदसे तादात्म्यसंसर्गसे भिन्न संसर्ग समझना चाहिए।

अन्योन्याऽभावस्य लक्षणमुदाहरणं च—

तादात्म्यसम्बन्धाऽवच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योऽन्याऽभावः। यथा—घटः पटो नेति।

अनुवाद—तादात्म्यसम्बन्धसे युक्त प्रतियोगितावाले अभावको 'अन्योऽन्याऽभाव' कहते हैं। जैसे—घट, पट नहीं हैं। अन्योन्याऽभावका प्रतियोगिता-

ऽवच्छेदक सम्बन्ध तादात्म्यसम्बन्ध ही होता है। 'घटः पटो न' इसका अर्थ हुआ घटका तादात्म्य पटमें नहीं है, घटमें ही है।

अन्योऽन्याऽभावं लक्षयति—तादात्म्येति। प्रागभावप्रध्वंसाऽभाववारणाय तादात्म्येति। अत्यन्ताऽभाववारणाय तादात्म्येन सम्बन्धो विशेषणीयः।

अनुवाद—अन्योऽन्याऽभावका लक्षण करते हैं—तादात्म्य इति। प्रागभाव और प्रध्वंसाऽभावमें अतिव्याप्ति हटानेके लिए 'तादात्म्य' को विशेषण बनाना चाहिए।

पदार्थोपसंहारः—

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदाऽर्था इति सिद्धम्।

अनुवाद—सब पदार्थोंके स्वरूपका अतिक्रमण न कर उक्त पदार्थोंमें अन्तर्भाव करनेसे सात ही पदार्थ है, यह सिद्ध हुआ।

टिप्पणी—न्यायदर्शनकार गौतम मुनिने सोलह पदार्थोंको लिखा है, जैसे —प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान—इन सोलह पदार्थोंका कणादमुनिकृत द्रव्य आदि सात पदार्थोंके भीतर अर्थात् द्रव्य, गुण, अभाव आदिमें अन्तर्भाव करनेसे सात ही पदार्थ हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

काणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये।
अन्नम्भट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायाऽन्नम्भट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः।

अनुवाद—कणादमुनि-कृत मत और गौतममुनि-कृत न्यायमतमें बालकोंकी व्युत्पत्तिकी सिद्धिके लिए विद्वान् अन्नम्भट्टने तर्कसंग्रहकी रचना की है।

पदार्थज्ञानस्य परमं प्रयोजनं मोक्ष इत्यामनन्ति। स चात्यन्तिकैकविंशति-दुःखध्वंसः। आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाऽधिकरणदुःखप्रागभावाऽसमानकालीनत्वम्। दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनाऽस्मदादीनामपि मुक्तत्वापपत्तिवारणाय कालीनाऽन्तम्। मुक्तयात्मकदुःखध्वंसस्याऽन्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वा-द्वामदेवादीनां मुक्तात्मनामपि अमुक्तत्वप्रसङ्गात्, 'स्वसमानाऽधिकरणे'ति प्राग-भावविशेषणम्। दुःखानि चैकविंशतिः—शरीरं, षडिन्द्रियाणि, षड् विषयाः, षड् बुद्धयः, दुःखं सुखं च। दुःखाऽनुषङ्गित्वाच्छरीरादौ गौणदुःखत्वम्। तथा च 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतेः आत्मज्ञान-

साधननिदिध्यासनश्रवणमननसाधनत्वं पदार्थज्ञाने सञ्जाघटीति। एवं च तत्त्वज्ञाने सति शरीरपुत्रादावात्मत्वस्वीयत्वाऽभिमानरूपमिथ्याज्ञानस्य नाशः, तेन दोषाऽभावः, तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः, ततस्तत्कालीनशरीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां प्रारब्धकर्मणां नाशस्ततो जन्माऽभावः।

> नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम्।
> ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत्॥
> अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः।

इत्यादिवचनात्। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इति श्रुतेश्च सगुणोपासनात्काशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिहेतुत्वम्। अतएव परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशतीति सारम्।

> चक्रे चन्द्रजसिंहो हि पदकृत्यमिदं शुभम्।
> परोपकारकरणं माधवो वीक्षतामिदम्॥
> इति चन्द्रजसिंहकृतं पदकृत्यं परिसमाप्तम्।

अनुवाद—पदार्थज्ञानका परम प्रयोजन मोक्ष है, ऐसा विद्वान् कहते हैं। आत्यन्तिक इक्कीस प्रकारके दुःखोंके ध्वंसको 'मोक्ष' कहते हैं। आत्यन्तिकका अर्थ है दुःखके अधिकरण कालमें दुःखके प्रागभावका न रहना। दुःखध्वंसकी अभी भी स्थिति रहनेसे हमारे ऐसे लोगोंकी भी मुक्तत्वकी आपत्ति हटानेके लिए 'कालीनान्त' पदका प्रयोग किया। मुक्तिरूप दुःखध्वंसका अन्य पुरुषके दुःखप्रागभावके समानकालीन होनेसे वामदेव आदि (मुक्त) जनोंकी भी अमुक्तत्वकी प्रसक्ति होनेसे प्रागभावका विशेषण 'स्वसमानाऽधिकरण' ऐसा पद दिया है। इक्कीस दुःख, जैसे—शरीर, छः इन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण और मन) छः विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, दुःखादि), छः बुद्धियाँ, दुःख और सुख। दुःखके अनुषङ्गी होनेसे शरीर आदिमें गौण (अप्रधान) दुःखत्व है। 'आत्माका प्रदर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए।' ऐसा आशय वेदमें होनेसे आत्मज्ञानके साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन पदार्थज्ञानमें सघटित होते हैं। इस प्रकार तत्त्वज्ञानके होनेपर और पुत्र आदिमें आत्मत्व स्वीयत्वका अभिमानरूप मिथ्याज्ञानका नाश होता है, उससे दोषोंका अभाव होता है। उससे प्रवृत्तिकी उत्पत्ति नहीं होती है। अनन्तर तत्कालीन शरीरसे अथवा कायव्यूह(शीघ्र मोक्ष पानेके लिए

योगबलसे एक ही बार लिये गये शरीर-समूह)से भोग और तत्त्वज्ञानके द्वारा प्रारब्ध कर्मोंका नाश होता है, तब जन्मका अभाव हो जाता है ।

'नित्य (सन्ध्यावन्दन-आदि) और नैमित्तिक (ग्रहणस्नान-आदि) कर्मोंसे ही पापोंका क्षय करता हुआ, ज्ञानको निर्मल कर अभ्याससे परिपक्व करें। इस प्रकार अभ्याससे परिपक्व ज्ञानवाला होकर मनुष्य कैवल्य(मोक्ष)को प्राप्त करता है ।' इत्यादि वचनसे और 'उसी परमात्माको जानकर मृत्युको पार करता है' (मोक्षको प्राप्त करता है) ऐसे वेद-वचनसे भी सगुण ईश्वरकी उपासना और काशी-मरण आदि भी तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिके कारण हैं, अतएव परमेश्वर (विश्वनाथ) काशीमें तारकमन्त्रका उपदेश करते हैं, यह सार है ।

चन्द्रजसिंहने इस कल्याणकारक पदकृत्यको बनाया । परोपकारके साधन इस पुस्तकको श्रीमाधवजी देखें ।

चन्द्रजसिंहरचित पदकृत्य (टीका) परिसमाप्त हुआ ।

उपमागम्योऽप्यनुमागम्यो योऽसौ भवोऽप्यभवः ।
पशुपतिरपि भुवनपतिर्विश्वमपायात्सदा पायात् ॥

अथाऽकारादिवर्णक्रमेण न्यायपदार्थकोशः

अजहल्लक्षणा=लक्ष्यशक्योभयबोध-प्रयोजिका, यथा—छत्रिणो यान्तीति। [लक्ष्य और शक्य दोनों अर्थोंको बोध करानेवाली लक्षणा। जैसे—छत्रिणो यान्ति। यहाँपर शक्य छत्रियोंके साथ लक्ष्य अच्छत्री भी जाने जाते हैं।]

अतिव्याप्तिः=लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वं, यथा—गोः शृङ्गित्वम्। [जो लक्ष्य(गो आदि)में रहकर अलक्ष्य(महिष आदि)में भी रहता है, उसे अतिव्याप्ति (लक्षणदोष) कहते हैं। जैसे—गोः शृङ्गित्वम्। शृङ्गित्व गाय और महिष दोनोंमें रहता हैं।]

अत्यन्ताऽभावः=त्रैकालिक-संसर्गाऽवच्छिन्न-प्रतियोगिताकः अभावविशेषः। यथा—भूतले घटो नास्ति। [त्रैकालिक होकर संसर्गसे युक्त प्रतियोगितावाला अभाव। जैसे—भूतलमें घड़ा नहीं है।]

अधर्मः (गुणः)=वेदनिषिद्धकर्मजन्यत्वं गुणत्वम्। [वेदमें निषिद्ध कर्मसे उत्पन्न गुण। जैसे—सुरापान आदि।]

अनन्यथासिद्धत्वम्=अन्यथासिद्धिशून्यत्वम्। [अन्यथासिद्धिसे शून्यको अनन्यथासिद्ध कहते हैं।]

अनित्यत्वम्=ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वा। [ध्वंसके प्रतियोगी वा प्रागभावके प्रतियोगीको 'अनित्य' कहते हैं। जैसे—घट।]

अनुपसंहारी (सव्यभिचारहेत्वाभासभेदः)=अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितः, यथा—सर्वम् अनित्यं, प्रमेयत्वात्। (सव्यभिचार हेत्वाभासका भेद) [अन्वय और व्यतिरेकके दृष्टान्तसे रहित। जैसे—सब अनित्य हैं, प्रमेय होनेसे, यहाँपर पक्ष सबके प्रमेय होनेसे दृष्टान्त नहीं है।]

अनुभवः—(बुद्धिभेदगुणः)=स्मृतिभिन्नं ज्ञानम् । [स्मृतिसे भिन्न ज्ञान ।]

अनुमानम् (प्रमाणम्)=अनुमितेः करणं, लिङ्गपरामर्शः । [अनुमितिका करण, लिङ्गपरामर्श ।]

अनुमितिः (बुद्धि-भेदगुणः)=परामर्शजन्यं ज्ञानम्, 'पर्वतो वह्निमान्' इति ज्ञानम् । [परामर्शसे उत्पन्न ज्ञान, जैसे—'पर्वत वह्निवाला है' ऐसा ज्ञान ।]

अन्यथासिद्धिः=अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिन एवं कार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वम् । [अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्ती(दण्ड आदि)से ही कार्यके सम्भवमें उसका सहभूत-(दण्डत्व आदि)का होना ।]

अन्योन्याऽभावः (अभावभेदः)=तादात्म्यसम्बन्धाऽवच्छिन्नप्रतियोगिताकः, यथा—घटः पटो न । [तादात्म्य सम्बन्धसे युक्त प्रतियोगितावाला अभाव, जैसे—घट पट नहीं है ।]

अन्वयव्यतिरेकि (लिङ्गविशेषः)=अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमत्, यथा—वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । [अन्वय और व्यतिरेकसे व्याप्तिवाला लिङ्ग (हेतु), जैसे—वह्नि साध्यमें धूमवत्त्व ।]

अन्वयव्याप्तिः=तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः । यत्र धूमस्तत्राऽग्निर्यथा—महानसम् इति अन्वयव्याप्तिः । साध्यसाधनयोः साहचर्यम् अन्वयः । [उसके होनेपर उसका होना । जैसे—जहाँ धुँआँ है वहाँ आग है, जैसे—महानस (पाकशाला) । साध्य और साधनका साहचर्य अन्वय है ।]

अपक्षेपणम् (कर्मविशेषः)=अधोदेशसंयोगहेतुः । [अधोदेशके संयोगका कारण ।]

अपरत्वम् (गुणविशेषः)=अपरव्यवहाराऽसाधारणकारणम् । तद् द्विविधम्—समीपस्थे दिक्कृतम् अपरत्वम् । कनिष्ठे कालकृतम् अपरत्वम् । [अपर व्यवहारका असाधारण कारण । वह दो प्रकारका होता है—दैशिक और कालिक । समीपस्थितमें दैशिक और कनिष्ठमें कालिक अपरत्व होता है ।]

अपरसामान्यम् (जातिविशेषः)=न्यूनदेशवृत्तित्वम् । [न्यूनदेशमें रहनेवाली जाति ।]

अपानः (वायुविशेषः)=जलादेरधःप्रापको वायुः । [जल आदिको नीचे पहुँचानेवाला वायु ।]

अभावः=प्रतियोगिज्ञानाऽधीनज्ञानविषयः। [प्रतियोगीके ज्ञानके अधीन ज्ञानका विषय।]

अयथार्थस्मृतिः=अप्रमाजन्या स्मृतिः अयथार्था। [अयथार्थ ज्ञानसे उत्पन्न स्मृति (स्मरण)।]

अयथार्थाऽनुभवः (बुद्धिभेदः)=तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा—शुक्तौ रजतम् इति। [शुक्तित्व आदिके अभाव वाले रजत आदि पदार्थ-में शुक्तित्व विशेषणवाला अनुभव। जैसे—'सीपीमें चाँदी है' ऐसा अनुभव।]

अयुतसिद्धौ=ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमपराश्रितमेवाऽवतिष्ठते तावयुतसिद्धौ। यथा—अवयवाऽवयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेष-नित्यद्रव्ये चेति। [जिन दोनोंके बीचमें एक नष्ट न होनेतक दूसरेका आश्रित रहता है. वैसे दोनों पदार्थ 'अयुतसिद्ध' कहलाते हैं। जैसे—अवयव (कपाल) और अवयवी (घट), गुण और गुणी (द्रव्य), क्रिया और क्रियावान्, जाति और व्यक्ति, विशेष और नित्यद्रव्य, ये अयुतसिद्ध कहलाते हैं।]

अवयवत्वम्=प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम्। [प्रतिज्ञा आदि पाँचोंमें अन्यतम।]

अव्याप्तिः (लक्षणदोषः)=लक्ष्यैकदेशाऽवृत्तित्वं, यथा—गोः कपिलत्वम्। [लक्ष्यके एक भागमें न रहना; जैसे—गायका कपिलत्व।]

असमवायिकारणम्=कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति कारणम्। यथा—तन्तुसंयोगः पटस्य। तन्तुरूपं पटगतरूपस्य। [कार्य वा कारणके साथ एक पदार्थमें समवायसम्बन्धसे रहनेवाला, जैसे—तन्तुसंयोग पटका असमवायिकारण है और तन्तुरूप पटरूपका कारण है।]

असम्भवः (लक्षणदोषः)=लक्ष्यमात्राऽवृत्तित्वं, यथा—गोः एकशफत्व-वत्त्वम्। [लक्ष्यमात्रमें न रहना, जैसे—गायका एक खुरवाला होना।]

असाधारणः (सव्यभिचारभेदः हेत्वाभासः) = सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिः, यथा—शब्दो नित्यः शब्दत्वात्। (सब सपक्ष और विपक्षसे व्यावृत्त होकर पक्षमात्रमें रहनेवाला, जैसे—शब्द नित्य है शब्दत्वसे।]

असिद्धः (हेत्वाभासविशेषः)=आश्रयाऽसिद्ध-स्वरूपाऽसिद्ध-व्याप्यत्वाऽ-सिद्धान्यतमः। [आश्रयाऽसिद्ध, स्वरूपाऽसिद्ध और व्याप्यत्वाऽसिद्धमें एक।]

आकरजम् (तेजसो विषयभेदः)=यथा—आकरजं तेजः सुवर्णादि। [आकर(खान)से उत्पन्न तेज, सोना आदि।]

आकाङ्क्षा (वाक्यार्थज्ञानहेतुविशेषः)=पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्ताऽन्वयानुभावकत्वम् । [पदका दूसरे पदके बिना शाब्दबोध का न होना ।]

आकाशम् (द्रव्यभेदः)=शब्दगुणकम् । तच्चैकं विभु नित्यं च । [शब्दगुणवाला द्रव्यविशेष । वह एक, विभु और नित्य है ।]

आकुञ्चनम् (कर्मविशेषः)=शरीरसन्निकृष्टसंयोगहेतुः । [शरीरके निकट संयोगका कारण ।]

आत्मा (द्रव्यविशेषः)=ज्ञानाऽधिकरणमात्मा । स द्विविधः—जीवात्मा परमात्मा चेति । [ज्ञानका आश्रय । वह दो प्रकारका है—जीवात्मा और परमात्मा ।]

आपः (द्रव्यविशेषः)=शीतस्पर्शवत्यः (ता द्विविधा—नित्या अनित्याश्च) । [(जलम्), शीत स्पर्शवाला पदार्थ । उसके दो भेद हैं—नित्य और अनित्य ।]

आप्तः=यथार्थवक्ता (यथाभूताऽबाधिताऽर्थोपदेष्टा) ।

आश्रयाऽसिद्धत्वम् (हेत्वाभासविशेषः)=पक्षताऽवच्छेदकाऽभाववत्पक्षकत्वम्, यथा—गगनाऽरविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्, सरोजाऽरविन्दवत् । [पक्षताऽवच्छेदक(पक्षत्व)के अभावसे युक्त पक्ष जहाँपर रहता है, उसे आश्रयासिद्ध कहते हैं ।]

इच्छा (गुणविशेषः)=इच्छात्वजातिमती । तस्याः पर्यायः कामः । [जहाँ इच्छात्व जाति रहती है । इसे 'काम' भी कहते हैं ।]

इन्द्रियार्थसन्निकर्षः=प्रत्यक्षज्ञानहेतुः, स षड्विधः । पुनर्द्विविधो—लौकिकोऽलौकिकश्च । ['प्रत्यक्षज्ञानहेतु' इन्द्रिय और पदार्थंका सम्बन्ध । संयोग आदि इसके छः भेद हैं ।]

ईश्वरः (आत्मभेदद्रव्यम्)=समवायसम्बन्धेन नित्यज्ञानवान् । (समवायसम्बन्धसे नित्यज्ञानका आश्रय ।]

उत्क्षेपणम् (कर्मभेदः)=ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुः । [ऊर्ध्वदेशसे संयोगका कारण ।]

उदर्यम् (तेजसो विषयभेदः)=भुक्तस्य परिणामहेतुः उदर्यं तेजः । [भुक्त पदार्थके परिणामका हेतु उदर्य तेज ।]

उदानः (वायुद्रव्यभेदः)=अन्नादेरूर्ध्वनयनहेतुर्वायुः । 'उदानः कण्ठदेशस्थः । [अन्न आदिके ऊपर पहुँचानेमें कारण वायु ।]

उदाहरणम् (परार्थाऽनुमानस्य एकोऽवयवः)=व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्त-वचनम् । यथा—यो यो धूमवान्स सोऽग्निमान् इति । [व्याप्तिका प्रतिपादक दृष्टान्त-वचन ।]

उदीचि (दिशाभेदः)=पुरुषस्य सुमेरुसन्निहिता दिक् । [सुमेरु पर्वतकी निकटस्थ दिशा ।]

उद्देशः=नाममात्रेण वस्तुसङ्कीर्तनम् । [नाममात्रसे वस्तुका कीर्तन ।]

उपनयः (परार्थानुमानस्य एकोऽवयवः)=उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकं वचनम् । यथा—तथा चाऽयम् इति । [व्याप्ति-विशिष्ट लिङ्गका प्रतिपादन करनेवाला वचन ।]

उपमानम् (प्रमाणविशेषः)=उपमितिकरणम् (सादृश्यज्ञानम्) । यथा—अयं (गौः) गवयपदवाच्य इति । अस्य त्रयो भेदाः—सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानम्, असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानम्, वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च । [उपमितिका करण (सादृश्यज्ञान), इसके तीन भेद हैं ।]

उपमितिः (यथाऽर्थानुभवभेदः)=संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानम् । संज्ञा=पदं, संज्ञी=अर्थः, तयोः सम्बन्धः शक्तिः । [संज्ञा (पद) और संज्ञी(पदार्थ)का सम्बन्धज्ञान ।]

उपाधिः (हेतुदोषः)=साध्यव्यापकत्वे सति साधनाऽव्यापकत्वम् । अस्य त्रयो भेदाः—केवलसाध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः, साधनाव-च्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति । [साध्यमें व्यापक होकर साधन(हेतु)में अव्या-पक । इसके तीन भेद हैं ।]

करणम् (कारणविशेषः)=व्यापारवद् असाधारणं कारणम् । [व्यापारसे युक्त असाधारण कारण ।]

कर्म (पदार्थविशेषः)=चलनात्मकं कर्म । संयोगभिन्नत्वे संयोगाऽसमवायि-कारणम्, अस्य पञ्च भेदाः । [चलनरूप । संयोगसे भिन्न होकर जो संयोगका असमवायिकारण है । इसके पांच भेद हैं ।]

कारणम्=अन्यथासिद्धिशून्यत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तिः । अस्य त्रयो भेदाः—समवायिकारणम्, असमवायिकारणं, निमित्तकारणं च । [अन्यथा-सिद्धिसे शून्य होकर जो कार्यसे नियतपूर्ववृत्ति है । इसके तीन भेद हैं ।]

कार्यम्=प्रागभावप्रतियोगि। (यस्याऽभावः स प्रतियोगि।) [प्रागभाव-का प्रतियोगी।]

कालः (द्रव्यविशेषः)=अतीतादिव्यवहाराऽसाधारणहेतुः। अस्य त्रयो भेदाः। [अतीत आदि व्यवहारका असाधारण कारण। लोकमें इसके तीन भेद हैं—भूत, भविष्यत् और वर्तमान।]

केवलव्यतिरेकि (लिङ्गविशेषः)=अन्वयव्याप्तिशून्यत्वे सति व्यतिरेक-व्याप्तिमत्त्वम्, यथा—पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वाद् यदितरेभ्यो भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा—जलम्, न चेयं तथा, तन्मान्न तथेति। [अन्वयव्याप्तिसे रहित होकर व्यतिरेक व्याप्तिवाला।]

केवलाऽन्वयि (लिङ्गविशेषः)=अन्वयमात्रव्याप्तिकम्। यथा—घटोऽभि-धेयः प्रमेयत्वात् पटवत्। (अन्वयव्याप्तिवाला लिङ्ग (हेतु)।]

गन्धः (गुणविशेषः)=घ्राणग्राह्यो गुणः, स द्विविधः—सुरभिरसुरभिश्च। पृथिवीमात्रवृत्तिः। [घ्राण-इन्द्रियसे ग्रहण किया जानेवाला गुण। इसके दो भेद है—सुगन्ध और दुर्गन्ध। यह केवल पृथिवीमें रहता है।]

गुरुत्वम् (गुणविशेषः)=आद्यपतनाऽसमवायिकारणम्। पृथिवीजलवृत्तिः। [आद्य (पहला) पतनका असमवायिकारण। पृथ्वी और जलमें रहनेवाला।]

घ्राणम् (इन्द्रियविशेषः)=पृथिव्या इन्द्रियं गन्धग्राहकं नासाऽग्रवर्ति। [पृथिवीका इन्द्रिय, गन्धका ग्राहक, नासिकाके अग्रभागमें रहनेवाला।]

चक्षुः (इन्द्रियविशेषः)=तेजस इन्द्रियं, रूपग्राहकं, कृष्णताराऽग्रवर्ति। [तेजका इन्द्रिय, रूपका ग्राहक, आँखकी पुतलीके अग्रभागमें रहनेवाला।]

जहल्लक्षणा=वाच्याऽर्थस्याऽन्वयाऽभावः, यथा—गङ्गायां घोषः। [जहाँ वाच्य अर्थका अन्वय नहीं है, जैसे—गङ्गायां घोषः।]

जीवः (आत्मविशेषः)=सुखादिसमवायिकारणम्। प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च। [सुख आदिका समवायिकारण, आत्मा।]

जीवनयोनिः (प्रयत्नविशेषः, गुणभेदः)=जीवनाऽदृष्टजन्यो गुणः। स च प्राणसञ्चारकारणम्। [जीवनके अदृष्ट(धर्म और अधर्म)से उत्पन्न गुण। वह प्राणसञ्चारका कारण है।]

तर्कः (अयथार्थाऽनुभवभेदः)=व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः। यथा—'यदि

वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यात्' इति। [व्याप्यके आरोपसे व्यापकका आरोप। पदार्थ।]

तेजः (पदार्थविशेषः)=उष्णस्पर्शवत्। तद् द्विविधं—नित्यमनित्यं च। [उष्ण स्पर्शवाला पदार्थ। वह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य।]

त्वक्=वायोरिन्द्रियम्, स्पर्शग्राहकम्, सर्वशरीरवृत्तिः। [वायुका इन्द्रिय, स्पर्शका ग्राहक, सब शरीरमें रहनेवाला।]

दक्षिणा (दिग्विशेषः)=मेरोर्व्यवहिता दिक्। [सुमेरुसे व्यवहित दिशा।]

दिक् (द्रव्यविशेषः)=प्राच्यादिव्यवहाराऽसाधारणहेतुः। सा चैका नित्या विभ्वी च। [पूर्व आदि व्यवहारका असाधारण कारण।]

दिव्यम् (तेजोविषयभेदः)=अबिन्धनं, विद्युदादि। [तेजका भेद, जलसे प्रदीप्त होनेवाला, बिजली आदि।]

दुःखम् (गुणविशेषः)=सर्वेषां प्रतिकूलतया वेदनीयम्। [सबकी प्रतिकूलतासे वेदनीय गुणविशेष।]

द्रवत्वम् (गुणविशेषः)=आद्यस्यन्दनाऽसमवायिकारणं, पृथिव्यप्तेजोवृत्तिः। [आदिस्यन्दन(चूने)का असमवायिकारण गुण। पृथ्वी, जल और तेजमें रहनेवाला।]

द्रव्यम् (पदार्थविशेषः)=द्रव्यत्वजातिमत्त्वं, गुणवत्त्वं, समवायिकारणत्वं वा द्रव्यत्वम्। [द्रव्यत्व जातिवाला, अथवा गुणवाला, अथवा समवायिकारण।]

द्वेषः (गुणविशेषः)=क्रोधः, द्वेष्टीत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान्, द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा। [क्रोध, द्वेषत्वजातिवाला गुण।]

धर्मः (गुणविशेषः)=वेदविहितकर्मजन्यः। (धर्माऽधर्मौ अदृष्टपदवाच्यौ, वासनाजन्यौ च)। [वेदमें विहित कर्मसे उत्पन्न गुण।]

निगमनम् (पराऽर्थानुमानाऽवयवः)=पक्षे साध्यस्याऽबाधितत्वप्रतिपादकवचनम्। यथा—'तस्मात्तथे'ति। ['पक्षमें साध्य बाधित नहीं है' ऐसा प्रतिपादन करनेवाला वचन।]

नित्यत्वम्=ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाऽप्रतियोगित्वम्। [ध्वंससे भिन्न होकर ध्वंसके अप्रतियोगीको 'नित्य' कहते हैं।]

नित्यद्रव्याणि=पृथिव्यप्तेजोवायूनां परमाणवः आकाशकालदिगात्ममनांसि। [पृथिवी, अप्, तेज और वायुके परमाणु और आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—इनको 'नित्यद्रव्य' कहते हैं।]

निमित्तकारणम्=समवाय्यसमवायिभिन्नं कारणं, यथा—तुरीवेमादिकं पटस्य। [समवायि और असमवायि कारणसे भिन्न कारण।]

निर्विकल्पकम् (प्रत्यक्षविशेषः)=निष्प्रकारकं ज्ञानम्। [प्रकारता-(विशेषण)से शून्य ज्ञान।]

निवृत्तिः (प्रयत्नविशेषः)=द्वेषजन्यो गुणः। [द्वेषसे उत्पन्न प्रयत्न। गुणभेद।]

न्यायत्वम्=प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वम्। [प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों को 'न्याय' कहते हैं।]

पक्षः=सन्दिग्धसाध्यवान्, यथा—धूमवत्वे हेतौ पर्वतः। [जिसमें साध्य-(वह्नि आदि)का सन्देह होता है। जैसे—पर्वत आदि।]

पक्षधर्मता=व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वम्। (व्याप्यस्य=व्याप्त्याश्रयस्य धूमादेरित्यर्थः)। [व्याप्तिविशिष्ट धूम आदिका पर्वत आदि पक्षमें रहनेको 'पक्षधर्मता' कहते हैं।]

पदम्=शक्तम्, निरूपकतासम्बन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः। [निरूपकता-सम्बन्धसे शक्तिविशिष्टको 'पद' कहते हैं।]

पदार्थत्वम्=द्रव्याद्यन्यतमत्वव्याप्यम्। [द्रव्य आदि सातोंमें अन्यतमको 'पदार्थ' कहते हैं।]

परत्वम् (गुणविशेषः)=परव्यवहाराऽसाधारणं कारणम्। दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्। ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम्। [परव्यवहारमें असाधारण कारण। दूरस्थमें दैशिक परत्व है और ज्येष्ठमें कालकृत परत्व है।]

परसामान्यम्=अधिकदेशवृत्तिः। परं=सत्ता। [अधिक देशमें रहनेवाली जाति।]

परामर्शः=विषयितासम्बधेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानम्। यथा—वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानम्। [विषयितासम्बन्धसे व्याप्तिविशिष्ट पक्षका धर्मज्ञान।]

पराऽर्थाऽनुमानम् (प्रमाणविशेषः)=यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय पर-प्रत्ययाऽर्थं पञ्चाऽवयववाक्यं प्रयुज्यते तत्। [जो स्वयं धूमसे अग्निका अनुमान करके दूसरेको समझानेके लिए पांच अवयवोंवाले वाक्यका प्रयोग किया जाता है।]

परिमाणम् (गुणविशेषः)=मानव्यवहाराऽसाधारणकारणम्। नवद्रव्यवृत्तिः। तच्चतुर्विधम्—अणु, महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति। [मान-व्यवहारका असाधारण कारण। इसके चार भेद हैं।]

पाकः—विजातीयतेजः संयोगः। [विजातीयतेजःसंयोग।]

पृथक्त्वम् (गुणविशेषः)=पृथग्व्यवहाराऽसाधारणकारणम्। सर्वद्रव्यवृत्तिः। [पृथक् व्यवहारका असाधारण कारण। यह सब द्रव्योंमें रहता है।]

पृथिवी (द्रव्यविशेषः)=गन्धसमवायिकारणम्। सा द्विविधा—नित्याऽनित्या च। [गन्धका समवायिकारण द्रव्य। इसके दो भेद हैं।]

प्रतिज्ञा (पराऽर्थानुमानाऽवयवः)—साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनम्। यथा—पर्वतो वह्निमानिति। [साध्य(वह्नि आदि)से युक्त पक्ष(पर्वत आदि)का बोधक वाक्य।]

प्रतियोगी—यस्याऽभावः सः, यथा—घटाऽभावस्य प्रतियोगी घटः। [जिसका अभाव है, उसे 'प्रतियोगी' कहते हैं। जैसे—घटके अभावका प्रतियोगी घट होता है।]

प्रतीची (दिग्विशेषः)=अस्ताऽचलसंयुक्ता दिक्। [अस्त पर्वतमें संयोग-वाली दिशा।]

प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्षज्ञानकरणम्। इन्द्रियाऽर्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानम्। तद् द्विविधं—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति। [प्रत्यक्षज्ञानका करण। इन्द्रिय और पदार्थके सन्निकर्षसे उत्पन्न ज्ञान। उसके दो भेद हैं—सविकल्पक और निर्विकल्पक।]

प्रध्वंसः (अभावपदार्थविशेषः)—साऽऽदिरनन्तः प्रध्वंसः, उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य। [जिसका आदि है परन्तु अन्त नहीं है, उसे 'प्रध्वंस' कहते हैं। वह कर्मकी उत्पत्तिके अनन्तर होता है।]

प्रयत्नः (गुणविशेषः)—प्रयत्नत्वजातिमान्। स त्रिविधः-प्रवृत्तिनिवृत्ति-जीवनयोनिभेदात्। [प्रयत्नत्व जातिवाला गुणविशेष। इसके तीन भेद हैं।]

प्रवृत्तिः (प्रयत्नगुणविशेषः)—इच्छाजन्यो गुणः। [इच्छासे उत्पन्न गुणविशेष, प्रयत्नभेद।]

प्रसारणम् (कर्मविशेषः)=विप्रकृष्टसंयोगहेतुः। [शरीरसे दूर संयोगके कारणको 'प्रसारणकर्म' कहते हैं।]

प्रागभावः (अभावपदार्थविशेषः)—अनादिः सान्तः, उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य। [जिसका आदि नहीं, परन्तु अन्त है, उसे 'प्रागभाव' नामक अभाव कहते हैं। वह कार्यकी उत्पत्तिसे पहले होता है।]

प्राची (दिग्विशेषः)=उदयाऽचलसंयुक्ता दिक्। [उदय पर्वतमें संयुक्त दिशा।]

प्राणः (वायुविशेषः)=शरीराऽन्तःसञ्चारी वायुः, स चैकोऽप्युपाधिभेदात् प्राणाऽपानादिसंज्ञां लभते। [शरीरके भीतर संचरण करनेवाला वायु।]

बाधितः (हेत्वाभासविशेषः)—यस्य साध्याऽभावः प्रमाणेन निश्चितः सः, यथा—वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादित्यत्राऽनुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शेन प्रत्यक्षेण गृह्यत इति बाधितत्वम्। [जिसके साध्यका अभाव प्रमाणसे निश्चित है।]

बालः=अत्र (न्याये) अधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रः। [न्यायशास्त्रमें—व्याकरण आदिको पढ़ा हुआ है और न्यायशास्त्रका अध्ययन जिसने नहीं किया, वह 'बाल' है।]

बुद्धिः (गुणविशेषः)=सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं, सा द्विविधा—स्मृतिरनुभवश्च। [सब व्यवहारके कारणभूत ज्ञानको 'बुद्धि' कहते हैं।]

भावना (संस्कारभेदविशेषः)=अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वं भावनात्वम्, आत्ममात्रवृत्तिः। [अनुभवसे उत्पन्न होते हुए जो स्मृतिका कारण हो, ऐसा संस्कारविशेष।]

भोगः=सुखदुःखाऽन्यतरसाक्षात्कारः। [सुख और दुःखमें एकका साक्षात्कार।]

भौमम् (तेजोविषयविशेषः)—भौमं वह्न्यादिकम्। आदिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतिपरिग्रहः। [पृथिवीमें रहनेवाले वह्नि आदि तेजको 'भौम' कहते हैं।]

मनः (द्रव्यविशेषः)=सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियम्। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च (मूर्तद्रव्यम्)। सुख-दुःख आदिके अनुभव साधन इन्द्रियको 'मन' कहते हैं।]

मूर्तत्वम्—क्रियाश्रयत्वम्। मूर्तद्रव्याणि पृथिव्यप्तेजो वायुमनांसि। [क्रियाके आश्रयको 'मूर्त' कहते हैं।]

मोक्षः=आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः। [इक्कीस प्रकारके दुःखोंका आत्यन्तिक ध्वंस।]

यथार्थस्मृतिः (बुद्धिभेदः)=प्रमाजन्या स्मृतिः। [यथार्थ ज्ञानसे उत्पन्न स्मृति (स्मरण)।]

यथार्थाऽनुभवः (बुद्धिभेदः)=तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवः। तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकोऽनुभवः। यथा—रजत इदं रजतमिति। [रजतत्व आदि धर्मवाले रजत आदि पदार्थमें रजतत्व प्रकारक (विशेषण) वाला अनुभव। जैसे—रजतमें यह रजत है, ऐसा ज्ञान।]

योग्यता (वाक्याऽर्थज्ञाने हेतुविशेषः)=अर्थाऽबाधः। वह्निना सिञ्चति इति न प्रमाणं, योग्यताविरहात्। [पदार्थोंमें बाध न होनेको योग्यता कहते हैं।]

रसः (गुणविशेषः)=रसनाग्राह्यो गुणः, स च षड्विधः, पृथिवीजलवृत्तिः। [रसन इन्द्रियसे ग्राह्य गुणविशेषको 'रस' कहते हैं, इसके छः भेद हैं।]

रसनम् (इन्द्रियविशेषः)=(अपाम्) इन्द्रियं रसग्राहकं तच्च जिह्वाग्र-वर्तिः। [रसको ग्रहण करनेवाले इन्द्रियविशेषको 'रसन' कहते हैं। वह जिह्वाके अग्रभागमें रहता है।]

रूपम् (गुणविशेषः)=चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणः, तच्च सप्तविधं, पृथिव्यप्तेजो-वृत्तिः। [केवल चक्षुसे ग्रहण किये जानेवाले गुणको 'रूप' कहते हैं।]

लक्षणम्=अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवरूपदोषत्रयशून्यम् असाधारणधर्मो वा। [अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव इन तीन दोषोंसे रहितको अथवा असा-धारण धर्मको 'लक्षण' कहते हैं।]

लक्षणा=शक्यसम्बन्धः, सा च त्रिधा—जहदजहज्जहदजहद्भेदात्। [शक्यसम्बन्धको 'लक्षणावृत्ति' कहते हैं। इसके तीन भेद हैं।]

लिङ्गम् (हेतुः)=व्याप्तिबलेन यद्यस्य गमकं तत्तस्य लिङ्गम्। तच्च त्रिविधम्। [व्याप्तिके बलसे जो (धूम आदि) जिस(वह्नि आदि)का ज्ञान कराता है, वह (धूम आदि) उस(वह्नि)का लिङ्ग (हेतु) है।]

वाक्यम्=पदसमूहः, यथा—गामानयेति। तच्च द्विधा—वैदिकं लौकिकं चेति। [पदसमूहको 'वाक्य' कहते हैं। उसके दो भेद हैं—वैदिक और लौकिक।]